॥ ओ३म् ॥

उपनिषद्-वचनामृत

—लेखक—

पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

—प्रकाशक—

जन-ज्ञान-प्रकाशन
नई दिल्ली-५

जन-ज्ञान-प्रकाशन
१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली—५

मूल्य—५० पैसे

मुद्रक :
सैनी प्रिण्टर्स
देहली-६

वैशाखी
संवत् २०२६

अपनी ओर से !

प्रभु का दिखाया मार्ग ही प्रभु प्राप्ति में साधक है। उपनिषदों में वह प्रकाश है जिस के द्वारा हम सत्य पथ पर चल मोक्ष तक पहुँच सकते हैं।

प्रसिद्ध पत्रकार और आर्यविद्वान् पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार ने उपनिषदों का अमृत मार्ग सरल और सीधे रूप में प्रस्तुत कर जो पुण्य कार्य किया है। उस के लिए वे बधायी के पात्र हैं।

धर्म की रक्षा और प्रसार का पुण्य भी विरले भाग्यवानों को ही मिलता है। प्रस्तुत पुस्तिका के प्रकाशन में योग दान दिया आदर्श आर्य महिला रत्न श्रीमती प्रेमवती जी ने, संस्थान उनका आभारी है।

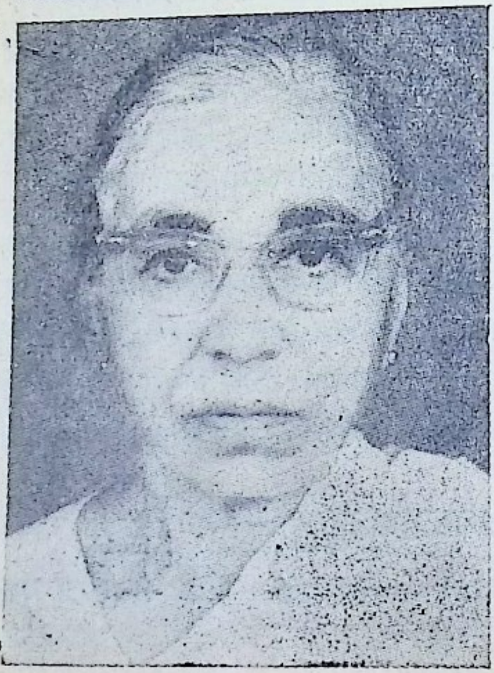
अधर्म की आंधी में धर्म का प्रकाश स्तम्भ बन कर "दयानन्द-संस्थान" सत्य और ज्ञान के प्रचार के लिए कृतसंकल्प है। भू मंडल से पाप की और दुःखों की समाप्ति के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं। जीवन में आनन्द गंगा का प्रवाह प्रवाहित करना हमारा लक्ष्य है।

परम पिता परमात्मा हमें शक्ति दें कि 'सत्य' का संबल लेकर हम ने जो धर्म पताका लहरायी है वह सर्वत्र फहरती रही। पाप मिटे, पुण्य उभरे इस आशा से पवित्र यज्ञ में सभी का सहयोग मिलेगा और धरती के सभी मनुष्य प्रभु पुत्र बन उसकी राह पर चलेंगे, इस विश्वास से यह अमृत-गगरी "उपनिषद्-वचनामृत" जन-जन को अर्पित है।

आशीर्वाद और शुभ कामनाओं सहित —

—भारतेन्द्र नाथ
अध्यक्ष





स्वर्गीय

श्री केशवचन्द्र जी

'दरगन'

की

पावन स्मृति में

उन की

धर्म परायण पत्नी

श्रीमती प्रेमवती जी

की सादर

श्रद्धांजलि सहित

प्रभु हमें उन के
बताए मार्ग पर
चलने की शक्ति दें

—प्रमवती

ईश उपनिषद् का सार

इस उपनिषद् के तीन भाग हैं। पहले भाग के प्रारम्भ में तीन मन्त्र हैं जिनमें पांच कर्त्तव्य बताये गये हैं, अर्थात् (१) ईश्वर को प्रत्येक स्थान में व्यापक समझना (२) संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं का उपयोग करते हुए भी यह स्मरण रखना कि ये सब पदार्थ ईश्वर प्रदत्त हैं। मनुष्य को केवल इनके प्रयोग का अधिकार है। (३) किसी के धन का अथवा अधिकार का हरण न करना। (४) फल की इच्छा के बिना केवल कर्त्तव्य भावना से सदा पुरुषार्थ करना। (५) अन्तरात्मा के विरुद्ध कभी आचरण न करना।

(२) दूसरे भाग के अन्तर्गत ४ से ८ तक के मन्त्र हैं। इनमें ब्रह्म विद्या और उसके मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है।

(३) तीसरा भाग ८ से १६ मन्त्र तक का है जिसमें ब्रह्म विद्या प्राप्ति के साधन बताये गये हैं। १७ वें मन्त्र में मृत्यु को अवश्यम्भावी बताते हुए उस समय क्या प्रार्थना करनी चाहिए—यह निर्देश देते हुए, मानव अपने को महान् समझता हुआ सदा सत्य की खोज करे—यह शिक्षा दी गयी है।

इस उपनिषद् में द्वन्द्वों का समन्वय किया गया है। प्रकृति-पुरुष, भोग-त्याग, कर्म-निष्कर्म, व्यक्ति-समाज, अविद्या-विद्या, भौतिक-अध्यात्म, कर्म-ज्ञान, मृत्यु-जन्म, विनाश-उत्पत्ति, सगुण-निर्गुण ब्रह्म-इनका समन्वय ही यथार्थ दृष्टि है। इस उपनिषद् में एक उल्लेखनीय सिद्धान्त यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि भौतिक विज्ञान 'अविद्या' है। उससे "मृत्यु" को तैर सकते हैं, "अमरता" तो "विद्या" अर्थात् अध्यात्म ज्ञान से ही प्राप्त होती है।

ईश्वर सर्वत्र व्यापक है

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।१।।

यह संसार गतिशील है और ईश्वर ही इसे गति देने वाला है। सब कुछ उस प्रभु का दिया हुआ है। इस संसार का भोग त्याग पूर्वक करो। किसी दूसरे के धन व अधिकार की आकांक्षा मत करो।

कर्मशील बनो

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।२।।

हे मनुष्य ! तू निष्काम भाव से शुभ कर्म करता हुआ ही १०० वर्ष तक जीने की इच्छा कर। इस प्रकार तुझ में कर्म की आसक्ति न होगी। इसके बिना अन्य कोई मार्ग नहीं है।

आत्मा का हनन मत करो

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।३।।

जो मनुष्य आत्मा का हनन करते हैं—अर्थात् आत्मा को गिराने वाले कर्म करते हैं अथवा आत्मा की वाणी नहीं सुनते—वे इस शरीर को छोड़ने के पश्चात् ऐसी गति को प्राप्त करते हैं, जो सर्वथा अन्धकारपूर्ण और दुःखमय है।

ईश्वर सर्वत्र समव्यापक

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।४।।

वह ईश्वर चेतन है, गतिमय है, इसलिये वह चलता प्रतीत होता है पर सर्वव्यापक होने से उसके लिए कोई अप्राप्त स्थान नहीं है

इसलिये वह नहीं चलता। अज्ञानियों के लिए वह दूर है, ज्ञानियों के निकट है। सृष्टि के प्रत्येक अणु और प्रत्येक आत्मा के वह भीतर है और बाहर भी है। इस समस्त जड़-चेतन ब्रह्माण्ड के भीतर-बाहर, दोनों प्रकार से वह व्याप्त है।

मैं सब में, और सब मेरे में

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥५॥

जो सब प्राणियों को अपनी आत्मा में ही देखता है और अपनी आत्मा को सब प्राणियों में देखता है, वह इस गहरी दृष्टि से देखने के कारण किसी पाप में नहीं फँसता।

मोह-शोक से छुटकारा

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूत् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥६॥

जिस जानने वाले ने सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान ान लिया और इस अनेक रूप विश्व में व्याप्त उस एक तत्त्व को ान लिया, फिर उसके लिए विषय सुख के वास्ते मोह नहीं और वषय सुख के छूट जाने से शोक पैदा नहीं होता।

ईश्वर शरीर के बन्धन से रहित

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥७॥

वह ईश्वर सर्वत्र एक समान व्याप्त, शुद्ध स्वरूप, शरीर, फोड़ा-सी, नस-नाड़ी रहित अतएव सर्वथा शुद्ध, पाप रहित, सर्वद्रष्टा, द्धि का भंडार, चारों ओर व्याप्त, अपनी सत्ता में स्थित, निर-र सृष्टि प्रवाह चलाता हुआ, समस्त पदार्थों और ज्ञान की वस्था करता है।

भौतिक विज्ञान और अध्यात्म ज्ञान

विद्यां चा विद्यां चा यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥८॥

"विद्या" अर्थात्, अध्यात्म ज्ञान और "अविद्या" अर्थात् भौतिक विज्ञान—इन दोनों को जो एक साथ जानता है, वह "अविद्या" से मृत्यु रूपी दुःख को पार कर जाता है और "विद्या" से "अमृत" पद का आनन्द प्राप्त करता है ।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥९॥

जो "संभूति" अर्थात् सामाजिक बल और "विनाश" अर्थात् व्यक्तिगत बल—दोनों को एक साथ जानता है । वह "विनाश" व्यक्तिगत बल की सभ्यता से मृत्यु रूपी दुःख—को पार कर जाते हैं और सामाजिक बल से अमृत का आनन्द प्राप्त करते हैं ।

सत्य पर सुनहरी पर्दा

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥१०॥

सुनहरे पाप से सत्य का मुख ढका हुआ है । हे उपासक ! उस झूठे आवरण को तू दूर कर दे, जिससे तू अपने सत्य स्वरूप आत्मा के दर्शन कर सके ।

शरीर का अन्त भस्म में है

वायुरनिलममृत यथेदं भस्मान्त ँ शरीरम् ।
ओं क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत ँ स्मर ॥११॥

—शरीर में रहने वाला प्राण मृत्यु के समय विश्व के अनिल अर्थात् इस महान् विश्व के वायु में लीन हो जाता है । इस शरीर का अन्त तो भस्म के साथ है, यह आत्मा ही अमर है । हे मनुष्य ! तू अपने

आगे होने वाले कर्मों का स्मरण कर, अपने सामर्थ्य का स्मरण कर और अब तक जितने कर्म कर चुका है, उनका स्मरण कर।

केन उपनिषद् का सार

इस उपनिषद् का नाम 'केन' इसलिए है क्योंकि इसके पहले मन्त्र का पहला शब्द 'केन' अर्थात् 'किसके द्वारा'—यह है। इस उपनिषद् का सारांश यह है कि मन, प्राण, वाणी, चक्षु, श्रोत्र इत्यादि 'ब्रह्म' नहीं है वस्तुतः, विश्व की आधारभूत शक्ति जिसकी प्रेरणा से यह सारे बाह्य साधन कार्य करते हैं, उसे ही महान् समझ, उसकी ही उपासना करो। इस ब्रह्म को जानने का उपाय 'प्रतिबोध' है। इन्द्रियों द्वारा जब बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है, तो वह 'बोध' है और जब ये इन्द्रियां बहिर्मुख न होकर अन्तर्मुख हो 'आत्मा' के अधीन होती हैं, तब 'प्रतिबोध' होता है।

विश्व के पंचभूत किस प्रकार उस ब्रह्म की शक्ति से ही कार्य करते हैं, इसे एक लघु कथानक से स्पष्ट किया गया है। इन पंचभूतों में अभिमान आ गया कि वे ही शक्ति युक्त हैं। उनके सामने 'यक्ष' (पूजनीय ब्रह्म) आया। इन्होंने उसे नहीं पहचाना और प्रत्येक ने कहा कि 'मैं ही शक्ति सम्पन्न हूं।' यक्ष ने इन पंचभूतों के सम्मुख एक तिनका रखा। अग्नि, वायु, इत्यादि उस तिनके पर किंचिन्मात्र भी अपना प्रभाव न डाल सके। तब, उन्होंने 'इन्द्र' (जीवात्मा) से 'यक्ष' (ब्रह्म) को ढूंढने के लिए कहा। 'इन्द्र' ने 'उमा' (बुद्धि) के द्वारा "यक्ष" को ढूँढा और फिर सब ने मिल कर उस "यक्ष" (ब्रह्म) की उपासना और पूजा की।

इस उपनिषद् में 'ब्रह्म' को 'वन' नाम दिया गया है, अर्थात् 'व' 'वन्दनीय' 'न' नमस्कारणीय। वह ब्रह्म वन्दना और नमस्कार के योग्य है। इसी की उपासना करनी चाहिए।

अन्त में ऋषि इस प्रश्न के उत्तर में कि वह किस प्रकार उपासनीय है, चार साधन बताते हैं। तप, दम, कार्य और वेदों के सब अंग। इन चार साधनों को ऋषि 'प्रतिष्ठा' अर्थात् जीवन के 'आयतन' भवन का आधार (प्रतिष्ठा) बताते हैं। इन चारों साधनों के अवलम्बन से ही जीवन रूपी भवन की नींव (प्रतिष्ठा) सुदृढ़ हो सकती है। जीवन का यह कार्यक्रम इसी जीवन में करना होगा। अन्यथा महान् विनाश होगा—ऋषि की यह चेतावनी है।

प्रतिबोध का मार्ग

प्रतिबोध विदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दन्ते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥१॥

इन्द्रियों का भीतर की ओर जाने वाला ज्ञान 'प्रतिबोध' कहा जाता है। जिस समय इन्द्रियां अभ्यन्तरमुखी हो जाती हैं, उसी समय अमृत पद प्राप्त होता है। इस प्रतिबोध की अवस्था को प्राप्त करने के लिए आत्मा का वीर्यवान्, शक्तिमान् होना आवश्यक है वीर्यवान् आत्मा ही विद्या=सत्य, ज्ञान द्वारा अमृत पदवी को प्राप्त करता है

उस ब्रह्म का नाम 'वन' है

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं।
स य एतदेवं वेदाऽभिहैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति॥२॥

वह ब्रह्म 'वन' भक्ति योग्य है। एकान्त में बैठकर अपने अन्दर "वन" अरण्यवृत्ति=एकान्त चिन्तन की वृत्ति धारण कर उसकी उपासना करनी चाहिए। ब्रह्म के इस रूप को जो जानता है, उसकी भक्ति करता है, सब भूत उसे चाहने वाले, उससे स्नेह करने वाले बन जाते हैं।

इसी जन्म में जानो

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥३॥

इस जन्म में यदि आत्मा को जान लिया तो जन्म सफल हैं, नहीं जाना तो जीवन विफल हुआ और बड़ी हानि हुई। समस्त प्राणियों में आत्मा के अस्तित्व का अनुभव कर धीर पुरुषमरने के बाद अमृत पद को प्राप्त करते हैं।

तस्यै तपोदमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ४ ॥

इस ब्रह्मज्ञान प्राप्ति की "प्रतिष्ठा" आधार-तप (शारीरिक नियन्त्रण), दम (मानसिक नियन्त्रण), कर्म (निष्काम कर्म) और चारों वेदों के अंग, इसी पर "सत्य" वास्तविक "आयतनम्" जीवन रूपी भवन का निर्माण होगा।

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते ।
स्वर्गे लोके ज्येयं प्रतिष्ठति प्रतिष्ठति ॥५॥

जो ब्रह्म विद्या के इस यथार्थ रूप को जानता है, वह पाप का नाश करके अन्त में अनन्त उत्तम स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है, अवश्य प्रतिष्ठित होता है। ○

कठ उपनिषद् का सार

इस उपनिषद् में गृहस्थ से प्रारम्भ करके मोक्ष प्राप्ति तक—जीवन के विभन्न अंगों पर पिता-पुत्र-वाजश्रवस्-नचिकेता और आचार्य-शिष्य पर नचिकेता के कथानक और पारस्परिक संवाद के रूप में उत्तम शिक्षा दी गयी है। कथानक का प्रारम्भ वाजश्रवस् ऋषि के संन्यास आश्रम में जाने और सर्वस्व दान करने और उसके पुत्र नचिकेता के बार-बार यह उपालम्भ देने पर कि इन निकम्मी वस्तुओं के दान से क्या लाभ, मुझ पुत्र का दान क्यों नहीं करते, पिता ने जब कहा कि "जाओ तुम्हें यम को देता हूं"। तब पुत्र यम ऋषि के आश्रभ में गया। ऋषि को वहां अनुपस्थित देख ब्रह्मचारी

अनशन किये तीन रात जब वहां रहा, और यम ऋषि ने वापस आ अतिथि को इस प्रकार अनशन में देख कहा कि जब किसी गृहस्थ के द्वार पर कोई विद्वान् बिना आतिथ्य सत्कार के रहता है, तब वह अपने पाप गृहस्थ के पास छोड़ जाता है और उसके पुण्य ले जाता है। इसलिए तू मुझसे तीन वर मांग ले। नचिकेता ने पहला वर मांगा कि जब मैं वापस घर जाऊं तब मेरे पिता का क्रोध शान्त हो जाए और वे मुझे पूर्ववत् प्रेम से मिलें। ऋषि द्वारा यह वर तत्काल स्वीकार किये जाने पर ब्रह्मचारी ने दूसरा वर मांगा कि स्वर्ग प्राप्ति में सहायक अग्नि विद्या का उपदेश चाहता हूं ऋषि ने वर दिया और यह भी आशीर्वाद दिया कि यह अग्नि तुम्हारे ही नाम पर अर्थात्, "नचिकेता अग्नि" के नाम से प्रसिद्ध होगी। नचिकेता ने तीसरा वर मांगा कि मृत्यु के बाद आत्मा कहां जाती है, इसका अस्तित्व रहता है व नहीं। ऋषि ने ब्रह्मचारी की परीक्षा लेने के लिए जब पहले यह कहा कि यह प्रश्न बड़ा कठिन है, विद्वान् भी इसका उत्तर नहीं जानते, तब युवक के इस उत्तर पर कि "आप से अधिक ऊंचा विद्वान् भला कौन है, किसके पास पूछने जाऊं ?" ऋषि ने ब्रह्मचारी की पुनः परीक्षा के लिए उसे उत्तम से उत्तम सांसारिक पदार्थों की तत्काल पूर्ति करने के प्रलोभन दिये, पर ब्रह्मचारी इन प्रलोभनों की ओर आकृष्ट नहीं हुआ तब अन्त में, यम ऋषिने ब्रह्मचारी को आत्म विद्या और ब्रह्म विद्या का उपदेश देते हुए अमृत पद को प्राप्ति को मार्ग बताते हैं। ऋषि ने श्रेय और प्रेय-जीवन के इन दो मार्गों का उपदेश देते हुए बताया कि मुमुक्षु श्रेय मार्ग का अवलोकन करता है और सांसारिक सुख का अभिलाषी प्रेय मार्ग को चुनता है।

आत्मदर्शन के उपाय यम ऋषि ने निष्काम कर्म, हर्ष, शोक से विरक्त और प्रभु कृपा—ये तीन बताये और अध्यात्म योग द्वारा ब्रह्मदर्शन के मार्ग का उपदेश दिया। इस विश्व की वृक्ष से उपमा देते हुए यम ऋषि ने कहा कि इस वृक्ष का मूल अपर में, शाखाएं

नीचे और इस वृक्ष का नाम अश्वत्थ (कल तक न रहने वाला, अर्थात् विनाशशील) है और अनादि काल से विद्यमान है। यह मूल ब्रह्म है, सब कुछ इसी में आश्रित है और कोई वस्तु इससे बाहर नहीं है। जिस समय मनुष्य की हृदय-स्थित सब कामनाएं समाप्त हो जाती हैं, इनसे मुक्त हो जाता है, तभी वह ब्रह्मदर्शन कर पाता है।

यम ऋषि इस आत्मज्ञान और ब्रह्म विद्या पूर्ण उपदेश को समाप्त करते हुए कहते हैं कि नचिकेता को दिये गये इस अध्यात्म उपदेश को जो जानेगा, वह भी नचिकेता के सदृश अपरपद को प्राप्त करेगा।

अगर विद्वान् अतिथि भूखा रहे

आशा प्रतीक्षे सङ्गत७ सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपशूं च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥१॥

उस गृहस्थ की सब आशाएं और सुख की प्रतीक्षाएँ, सत्सङ्ग का फल, मीठी वाणी, यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म और जनसेवा के विविध कार्य, इन सबके फल से वह छोटी बुद्धि वाला पुरुष वंचित रह जाता है और उसके पुत्र व पशु भी सब बेकार जाते हैं, जिसके घर में विद्वान् अतिथि बिना भोजन के रह जाता है।

नचिकेता का पहला वर

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्यात् वीतमन्युर्गोतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभि वदेत्प्रतीत एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥२॥

नचिकेता कहता है कि मैं पहला वर यह मांगता हूं कि हे मृत्यो! आपके पास से जब मैं अपने पिता के पास जाऊं तो वे

शान्त संकल्प, प्रसन्न मन, क्रोध रहित हों और मुझ से प्रसन्न होकर बोलें।

धर्माचार्य ने यह वरस्वीकार करते हुए कहा कि तुम्हारा पिता तुम्हें देखकर प्रसन्न और क्रोध रहित होगा और सुख की नींद सोएगा।

नचिकेता का दूसरा वर

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्ग लोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥३॥

हे आचार्य ! स्वर्ग प्राप्त कराने वाली उस अग्नि विद्या को आप जानते हैं जिसके द्वारा जरा और मृत्यु भूख-प्यास से छूट अमृतत्व की प्राप्ति होती है। मैं श्रद्धापूर्वक उस "स्वर्ग साधक अग्नि" का उपदेश चाहता हूं। मेरा द्वितीय वर यही है।

यम आचार्य ने कहा :—

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तं लोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥४॥

हे नचिकेता ! मैं उस "स्वर्ग साधक अग्नि" को जानता हूं। उसके द्वारा अनन्त लोकों की प्राप्ति होती है, यह लोकों का आधार है। यह "अग्नि" हृदय गुहा में निहित है। इस रहस्य को तू समझ और जान।

आचार्य यम ने प्रसन्न होकर कहा :—

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥५॥

"आज तुम्हें यह वर देता हूं कि यह अग्नि तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी। इस अनेक रंगों वाली "अग्नि" रूपी माला को तू ग्रहण कर। स्वर्ग साधक इस अग्नि का नाम आचार्य ने "नाचिकेता अग्नि" रख दिया।

तीन प्रकार की अग्नि

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मयज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ।।६

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ ये ही तीन अग्नियां हैं, यही जीव की तीन सन्धियां हैं और इन्हें ठीक प्रकार से पूरा करना, यही ती कर्म हैं, इन तीनों का पालन करने वाला जन्म-मृत्यु के चक्कर छूट जाता है। वह 'ब्रह्म यज्ञ' (ईश्वर भक्ति रूपी यज्ञ) करता हु स्तुति के योग्य ईश्वर को जानता हुआ, पूर्ण निश्चय के साथ, अ चल शान्ति को प्राप्त होता है।

नचिकेता का तीसरा वर

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद् विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ।।७।।

मनुष्य के मर जाने पर यह शंका होती है, कोई कहते हैं मरने के बाद भी कोई तत्त्व रहताहै और कोई कहते हैं कि कोई त नहीं रहता। आपसे शिक्षा पाकर मैं इस शंका का समाधान चाह हूं। मेरे वरों में यह तीसरा वर है।

श्रेय और प्रेय मार्ग

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो हि मन्दो योगक्षेम वृणीते ।।८।।

श्रेय और प्रेय—जीवन के ये दो प्रकार के मार्ग मनुष्य के साम आते हैं, धीर मनुष्य दोनों को भली भाँति विचार कर पृथ पृथक् विवेचन करता है। धीर पुरुष प्रेय की अपेक्षा श्रेय म को स्वीकार करता है और मन्द पुरुष सांसारिक लाभ के लिए प्र मार्ग का ही अवलम्बन करता है।

यम ऋषि द्वारा समाधान

धन का अभिमानी बार-बार जन्म मृत्यु चक्र में

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥९॥

बाल सदृश अल्प बुद्धि पुरुष को जो प्रमाद और धन के मोह से ढ़ हो गया है, उसे यम-नियम आदि पसन्द नहीं आते। वह नका पालन करने की अपेक्षा यही मान लेता है कि यही लोक सब छ है, परलोक नहीं है। ऐसा व्यक्ति बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र रहता है।

आत्मदर्शन के साधन

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥१०॥

कठिनता से दर्शन करने योग्य, गूढ़ स्थान के भीतर भी विद्यमान, द्धि रूपी गुहा में छिपा, गहन स्थान में स्थित, सबसे पुरातन, ऐसे त्मतत्त्व को अध्यात्म योग द्वारा जान कर धीर पुरुष हर्ष और ोक आदि द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है।

ओ३म् नाम सर्वोत्तम

सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्
॥११॥

सब वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, सब प्रकार के तप जिसका केत करते हैं, जिसको मिलने की इच्छा से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन या जाता है, उस पद को संक्षेप से तुझे मैं बतलाता हूं, वह ो३म्' पद है

ओ३म् ही ब्रह्म है

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ।।१२।।

यह ओ३म् ही निश्चय से न नष्ट होने वाला महान् है, यह ओ३ अक्षर ही उत्कृष्ट है, इस ओ३म् अक्षर को ही जान कर जो जि शुभ कामना को करता है, वह पूर्ण होती है।

ओ३म् ही सबसे बड़ा सहारा

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।।१३।।

यह ओ३म् ही सबसे श्रेष्ठ सहारा है, यह ओ३म् ही सब अन्तिम सहारा है, इस सहारे को जान कर ही मनुष्य इस ब्रह्मलो में महान् हो जाता है।

आत्मा जन्म-मृत्यु के बन्धन से रहित

न जायते म्रियते वा विपश्चिन् नायं कुतश्चिन्न बभूव
कश्चित् । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते
हन्यमाने शरीरे ।।१४।।

यह चेतन जीव न उत्पन्न होता है, न मरता है, न कभी पह उत्पन्न हुआ और न होगा। यह अजन्मा, नित्य, निरन्तर, औ पुरातन है, शरीर के मरने पर यह नहीं मरता।

ब्रह्म और आत्मा का साहचर्य

अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्माऽस्य जन्तो-
र्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ।।१५।।

वह ब्रह्म सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है वह इस पुरु की हृदय रूपी गुफा में छिपा हुआ है। निष्काम कर्मी और संसार वे

र्ग-शोक से रहित तथा समस्त जगत् को धारण करने वाले प्रभु की पा से उस परमात्मा को और अपने आत्मा को जाना जा कता है।

जिसे वह वर ले

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते
तनूं स्वाम् ।।१६।।

यह आत्मा न उपदेश-व्याख्यान आदि से, न तर्क से और न हुत सुनने से प्राप्त होता है। भगवान् जिसे वर लेते हैं, उसी को ाप्त होता है और उसके सम्मुख वह अपने सारे स्वरूप को खोल ता है।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।।१७।।

जो व्यक्ति दुराचार (दुर्विचार-व्यवहार) से हटा नहीं, जो ाशान्त है, स्थिर वृत्ति का नहीं है और चंचल मन वाला है, वह स आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। प्रज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया ा सकता है।

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।।१८।।

जिस व्यक्ति के लिए ज्ञान शक्ति और भौतिक शक्ति, दोनों ावल के भात की तरह हैं, अर्थात्, सहज प्राप्त हैं और मृत्यु जसके लिए भात को स्वादिष्ट बनाने के लिए चटनी के समान है, ह उस ब्रह्म को जहां भी हो वहां जान सकता है।

आत्मा भोक्ता है

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेंद्रिय मनोयुक्तं भोक्ते त्याहुर्मनीषिणः ॥१९-२०।

आत्मा को रथ का स्वामी जानो, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि और मन को लगाम जानो। इन्द्रियों को घोड़े और संसार के विषयों को इनका भोग। इस प्रकार शरीर, इन्द्रिय और मन के साथ आत्मा पदार्थों का भोग करता है ऐसा बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं।

इन्द्रियां कब वश में नहीं रहतीं ?

यस्त्वविज्ञानवान्भवति अयुक्तेन मनसा सह।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥२१॥

जो आत्म ज्ञान रहित है, उसका मन सदा आत्मा से अयुक्त रहेगा। दुष्ट घोड़े जैसे सारथी के वश में नहीं रहते, इसी प्रकार उसकी इन्द्रियां वश में नहीं रहतीं।

इन्द्रियां किसके वश में रहती हैं ?

यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥२२॥

जो आत्म ज्ञानी है ? जिसका मन आत्मा से युक्त रहता है, उसकी इन्द्रियां वश में रहती हैं, जैसे अच्छे घोड़े सारथी के वश में रहते हैं।

संसार के चक्र में बार बार कौन आता है ?

यस्त्वविज्ञानवान्भवति, अमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥२३॥

जो आत्म ज्ञानी नहीं है, जिसका मन आत्मा से युक्त नहीं, जो सदा अपवित्र विचारों वाला है, वह उत्तम पद को प्राप्त नहीं करता और जन्म-मरण के चक्र में आता रहता है।

संसार चक्र से कौन मुक्त होता है ?

यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ।।२४।।

जो आत्म ज्ञानी है, जिसका मन आत्मा के अधीन है जो पवित्र विचारों वाला है वह उस श्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है जहां से फिर संसार चक्र में नहीं आना होता ।

परम पद को कौन प्राप्त करता है ?

विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम् ।।२५।।

आत्म ज्ञान जिसका सारथि है जो मन रूपी लगाम को नियंत्रण में किये हुए है, वह इस संसार रूपी मार्ग को पार कर लेता है, वह सर्वव्यापक परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

कौन किससे परे है ?

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धि बुद्धेरात्मा महान् परः ।।
महतः परमव्यक्तमव्यात्क्त्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ।। २६-२७ ।।

इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय—रूप रस, गंध, स्पर्श, शब्द—दूर है। इन विषयों की अपेक्षा मन दूर है। मन की अपेक्षा बुद्धि परे है। बुद्धि की अपेक्षा यह महान् आत्मा परे है, दूर है । बाह्य जगत् (व्यक्त) की अपेक्षा कारण जगत् (अव्यक्त) प्रकृति परे है। और 'अव्यक्त' की अपेक्षा 'पुरुष' परमात्मा परे है। पुरुष से परे कुछ नहीं है। वह अन्तिम सीमा है और वही सर्वश्रेष्ठ है ।

सूक्ष्म बुद्धि से ईश्वर दर्शन

एष सर्वेषु भूतेषु गूढ आत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्रय्या बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।।२८।।

परमात्मा सब भूतों में अन्तर्गत तथा बाह्य जगत् में—व्याप्त हो, प्रकट नहीं होता । सूक्ष्म दर्शी लोग आगे-आगे चलने वाली सूक्ष्म बुद्धि से उसका दर्शन करते हैं ।

ज्ञान आत्मा, महान् आत्मा और शान्त आत्मा

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महतिनियच्छेतद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ।।२६।।

बुद्धिमान् पुरुष वाणी आदि इन्द्रियों तथा मन को संयम में करे और इन्हें 'ज्ञान आत्मा' में स्थिर करे, आत्मा को "महान् आत्मा" के साथ तथा "महान्आत्मा" को 'शान्त आत्मा' में सन्निहित करे ।

उठो, जागो, यह मार्ग कठिन है

उत्तिष्ठत्जागृत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारानिशिता दुरत्या दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ।३०।

उठो, जागो और प्रभु का वरदान प्राप्त करने वाले महात्माओं की शरण में आओ । तेज छुरे की धार के समान इस मार्ग को लांघना कठिन है । विद्वान् इसे दुर्गम मार्ग बताते हैं ।

ब्रह्म को जानकर ही मृत्यु मुख से बच सकता है

अशब्द मस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्यतन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ।।३१।।

वह ब्रह्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, उत्पत्ति-विनाश का विषय नहीं है । वह अनादि, अनन्त, महान्, सबसे परे, निश्चल, एक समान है । उसे निश्चित रूप से जान कर ही मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है ।

बाहर की ओर दौड़ने वाली ये इन्द्रियाँ

परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मान मैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ।।३२।।

परमात्मा नें इन इन्द्रियों को बाहर की ओर जाने वाला बनाया

है, अतः मनुष्य बाहर की ओर ही देखता है, अन्तरात्मा की ओर नहीं। अमृत का इच्छुक कोई विरला ही ऐसा धीर होता है जो इन इन्द्रियों को आत्मा की ओर प्रेरित करता है।

एकत्व है, नानात्व नहीं

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥३३॥

मन के द्वारा ही उस एक तत्त्व की प्राप्ति होती है। इन्द्रियों से दिखाई देने वाला "नानात्व" (अनेकता) उसमें नहीं है। जो इस अनेकता को ही देखता है, वह मृत्यु-दुःख में ही ग्रस्त रहता है।

आत्मा के मध्य अंगुष्ठमात्र ब्रह्म

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूत भव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वैतत् ॥३४॥

आत्मा के मध्य परमात्मा स्थित है, अंगूठे की तरह, अर्थात् मुट्ठी में चारों ओर से घिरा अंगूठा अथवा अंगूठे जितना। वह भूत-भविष्यत् का स्वामी है। उसे जानकर फिर मनुष्य को कोई शंका, भ्रान्ति व ग्लानि नहीं होती है।

आत्मा के विकास क्रम—१४ स्थितियाँ

हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथि र्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा बृहत् ॥३५॥

यम ऋषि ने इस श्लोक में आत्मा के १४ गुण अथवा अवस्थाएं बतायी हैं (१) वह जीवात्मा हंसवत् शुद्ध है (२) हृदयरूपी अन्तरिक्ष में निवास करता है। (३) होता के समान जीवन रूपी यज्ञ हृदय रूपी वेदी में बैठकर करता है (४) इस शरीर में वह अतिथि के समान रहता है, (५) नरदेह में वास करता है, (६) इसी वरदेह द्वारा उत्तम स्थिति को प्राप्त करता है, (७) जिसके फल स्वरूप (८) ऋतसत्—सत्य की स्थिति (९) व्योमसत्—आकाशवत् महती स्थिति को प्राप्त करता है, (१०) जल, (११) पृथिवी,

(१२) अन्तरिक्ष (१३) पर्वत इत्यादि पर जीव विभिन्न योनियों में रहता है। (१४) यही बड़ा सत्य है।"

मनुष्य के "नरदेह" "वरदेह" "ऋतदेह" और "व्योमदेह"—यह विकास के क्रम हैं।

जब आत्मा शरीर में से निकलने लगे

यस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थ देहिनः।
देहात् विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते, एतद्वैतत् ॥३६॥

शरीर में रहने वाला "देही" जीवात्मा—जब शरीर में से सरकने लगे—बाहर जाने लगे, तब बाकी क्या रह जाता है—यही तो आत्मा है।

प्राण शक्ति आत्मा पर ही आश्रित

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥३७॥

प्राण और अपान—इन दोनों प्रकार के प्राणों से कोई प्राणि नहीं जीता। किसी अन्य ही शक्ति से मनुष्य जीता है। ये दोनों प्राण जिसमें आश्रित हैं, वही आत्मा है।

मरने के पश्चात् आत्मा की गति

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥३८॥

हे नचिकेता! मैं तुझे गुप्त, महान्, सनातन रहस्य को बतलाता हूं कि मरने के बाद आत्मा की क्या गति होती है?

ज्ञान और कर्म के साथ योनि प्राप्ति

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम् ॥३९॥

जिसका जैसा "कर्म" होता है, जिसका जैसा "ज्ञान" होता है,

उसी के अनुसार "जीव योनि" (चेतन योनि) में और कोई "स्थाणु योनि" में जाता है।

सब प्राणियों में आत्मतत्त्व एक सदृश

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥४०॥

जैसे अग्नि प्रत्येक वस्तु के भीतर विद्यमान हैं पर उसने प्रत्येक रूप के अनुरूप अपना रूप बना लिया है, इसी प्रकार सब प्राणियों के भीतर आत्मतत्त्व एक सदृश ही है, यद्यपि बाह्य शरीरों के कारण उसमें विभिन्नता है।

ब्रह्म, भूतों के सुख-दुःख से, अलिप्त

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषै र्बाह्यदोषैः।
एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥४१॥

जिस प्रकार सूर्य आंख के बाहर के दोषों से प्रभावित नहीं होता, इसी प्रकार ब्रह्मभूतों के सुख-दुःख व मल से लिप्त नहीं होता।

ब्रह्मदर्शन से ही सुख-प्राप्ति

एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥४२॥

समस्त विश्व को वश में करने वाला ब्रह्म प्रकृति द्वारा भिन्न-भिन्न पदार्थों की रचना करता है, आत्मा में स्थित उस ब्रह्म को जो धीर देखते हैं, उन्हें ही निरन्तर सुख की प्राप्ति होती है, अन्यों को नहीं।

ब्रह्मदर्शन से ही शान्ति-प्राप्ति

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती: नेतरेषाम् ॥४३॥

अनित्य पदार्थों में वही एक नित्य है, चेतनों में वही एक चेतन है, अनेकों में वही एक मुख्य हैं, श्रेष्ठ कामनाओं की पूर्ति वही करता

है, अपने आत्मा के भीतर जो धीर पुरुष देखते हैं, उन्हें ही निरन्तर शान्ति प्राप्त होती है, अन्यों को नहीं ॥

ब्रह्म ही प्रकाश का स्रोत

**न तत्र सूर्यो याति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥४४॥**

वह ब्रह्म इतना ज्योतिर्मय है कि वहां सूर्य का प्रकाश फीका पड़ जाता है, वहां चांद और तारे और यह विद्युत् भी फीके हैं, फिर इस अग्नि का तो कोई महत्त्व ही वहाँ नहीं है। उसी के प्रकाश से समस्त प्रकाशक पदार्थ प्रकाशित होते हैं, यह सब विश्व उसी के प्रकाश से भासमान हो रहा है।

यह शरीर और जगत्—वृक्षतुल्य हैं

**ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः॥
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्मतदेवामृतमुच्यते।
तस्मिन् लोकाः श्रिताः सर्वे तदुनात्येति कश्चन, एतद्वै तत् ॥४५॥**

यह मनुष्य का शरीर एक सनातन "अश्वत्थ" वृक्ष के समान है। अश्वत्थ (अ=नहीं, श्व=कल, त्थ=ठहरने वाला) इसी प्रकार यह जगत् भी अश्वत्थ, वट वृक्ष के समान है। यह वृक्ष कैसा है, उल्टा टंगा हुआ है। अगर मनुष्य को उल्टा लटका दिया जाए तो वह वृक्ष की भाँति हो जाता है। जब यह शरीर वृक्ष की तरह अनित्य है, तो फिर इसमें मोह क्यों? विश्व का मूल ऊपर की ओर, अर्थात् ब्रह्म में स्थित है, विश्व के पंचभूत शाखा रूप नीचे की ओर है। वही ब्रह्म शुद्ध रूप और महान् तथा अमृत है, सब उसी में आश्रित हैं, कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता है। यही निश्चय से ब्रह्म है।

ब्रह्म के नियम से पंचतत्व कार्यशील

**भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः ॥४६॥**

ब्रह्म के भय अर्थात् कठोर नियमों के अनुसार अग्नि में ताप है, सूर्य में ताप है, विद्युत् और वायु उसी के नियम में रहते हैं और पांचवां मृत्यु उसी के भय—नियम से विश्व में सर्वत्र चक्कर लगाता है।

इसी जन्म में ब्रह्म को जानो

इह चेदशकद् बोद्दु प्राक् शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ।।४७।।

इस शरीर के छूट जाने से पहले—इसी जन्म में—अगर उसे जान लिया, तब 'सर्गलोक'—स्वर्गलोक—में शरीर धारण करता है।

इन्द्रियां आत्मा से पृथक् हैं

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ।।४८।।

इन्द्रियों का आत्मा से पृथक् उदय और अस्त होता है। आत्मा उत्पन्न नहीं होता। इन्द्रियों को आत्मा से पृथक् समझने वाला पुरुष शोकाकुल नहीं होता।

ब्रह्म के दर्शन हृदय, और मन से

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।४६।।

आँख से दिखाई देने वाले रूप के सदृश उस ब्रह्म का रूप नहीं है, इन आंखों से उसे कोई देख नहीं सकता। बुद्धिमान् हृदय से और मन से उसे पकड़ पाते हैं और उसे जानकर अमृत हो जाते हैं।

परम पद का स्वरूप

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमांगतिम् ।।५०।।

जब पांचों ज्ञानेन्द्रियां—मन के साथ स्थिर हो जाती हैं और

बुद्धि विचलित नहीं होती, उसे 'परमगति' (परम पद) कहा जाता है।

योग की स्थिति

**तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥५१॥**

इन्द्रियों की स्थिर स्थिति को योग कहते हैं। उस समय मनुष्य प्रमाद रहित हो जाता है। यह योग—'प्रभव''—शुभ संस्कारों की उत्पत्ति और 'अप्यय'—अशुभ संस्कारों का नाश कहाता है।

हृदय की कामनाएं जब छूट जाएँ

**यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥५२॥**

मनुष्य के हृदय में जो कामनाएं है जब वे छूट जाती हैं, तब "मर्त्य" मरणधर्मा मनुष्य 'अमर्त्य' मृत्यु से छूट जाता है और इसी जन्म में ब्रह्म प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मनिष्ठ के प्राण सिर की नाड़ी से निकलते हैं

**शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥५३॥**

हृदय की एक-सौ एक नाड़ियां हैं जिनमें से एक मूर्धा की ओर निकल गयी है। मृत्यु के समय उस नाड़ी से जो ऊपर को उत्क्रमण करता है वह अमृतत्व को प्राप्त करता है। शेष नाड़ियों से साधारण व्यक्तियों के प्राण उत्क्रमण करते हैं। ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति के प्राण मूर्धा से निकलते हैं, दूसरों के अन्य मार्गों से।

यम ऋषि का उपदेश जो सुनेगा, वह अमर हो जाएगा

**मृत्यु प्रोक्तां नचिकेतोऽथलब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।
ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूत विमृत्युरन्योऽप्येवं योविदध्यात्ममेव ॥५४॥**

मृत्यु (यम) ऋषि ने नचिकेता को जिस विद्या तथा 'योगविधि' का उपदेश दिया, उसे पाकर नचिकेता ब्रह्म युक्त तथा मलविहीन हो गया, मृत्यु से रहित हो गया । दूसरा जो भी कोई इस अध्यात्म विद्या को जानेगा, वह नचिकेता के सदृश अमृत पद को प्राप्त करेगा ।

प्रश्न उपनिषद्

छः ब्रह्मचारी जो जिज्ञासु और ब्रह्मनिष्ठ थे—हाथ में समिधा लेकर ब्रह्म की खोज में पिप्पलाद ऋषि की सेवा में अपनी शंकाओं का निवारण करने के लिए पहुंचे । ऋषि ने कहा "तुम एक वर्ष तक मेरे पास 'तप' 'ब्रह्मचर्य' और 'श्रद्धा' पूर्वक निवास करो । उसके बाद अपनी इच्छानुसार प्रश्न करना और यदि हम उत्तर जानते होंगे तो सब कुछ बता देंगे ।" एक वर्ष बीत जाने के बाद शिष्यों ने प्रश्न प्रारम्भ किये जो छः थे ।

पहला प्रश्न—सृष्टि का प्रारम्भ किससे ?

कबन्धि ऋषि का प्रश्न था "सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजा—समस्त प्राणियों की—उत्पत्ति किससे होती है ?"

उत्तर—'प्राण' और 'रयि' सृष्टि के कारण

प्रजाकामो वै प्रजापतिः —

स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते ।
रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ।।

जगत् के स्वामी प्रजापति को जब प्रजा की उत्पत्ति की कामना हुई तो उसने 'तप' किया । तप करने के बाद उसने 'मिथुन' जोड़े को उत्पन्न किया । ये मिथुन हैं 'रयि' तथा 'प्राण' । प्रजापति ने कहा,

भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रजा को 'रयि' तथा 'प्राण' ही उत्पन्न करेंगे। 'प्राण' धन शक्ति (पोजिटिव) अथवा भोक्तृ शक्ति और 'रयि' ऋण शक्ति (नेगेटिव) भोग्य शक्ति, अथवा 'प्राण' कर्तृत्व शक्ति (एक्टिव) और 'रयि' कर्म शक्ति (पैस्सिव) है। आदित्य प्राण शक्ति, चन्द्रमा, रयि शक्ति है। उत्तरायण—अर्थात् जब सूर्य उत्तर की ओर होता है वह प्राण शक्ति है और "दक्षिणायन" जब सूर्य दक्षिण की ओर होता है वह रयि शक्ति है। 'दिन' का समय 'प्राण' है और "रात्रि" का समय 'रयि' है। प्रत्येक वस्तु में 'प्राण' और 'रयि' का सम्मिश्रण है।

इस प्रकार विश्व में सर्वत्र 'द्वित्व' (ड्यूएलिटी) है। इसी द्वित्व से 'अनेकता' (मल्टिप्लीटी) का प्रादुर्भाव होता है।

दूसरा प्रश्न—कौन देव 'धारण' 'प्रकाश' और मुख्य है ?

वैदर्भि ने पिप्पलाद ऋषि से पूछा—इस प्रजा को कौन देव 'धारण' करते हैं, कौन 'प्रकाशित' करते हैं और इन में कौन मुख्य हैं?

उत्तर—प्राण ही 'धारण' 'प्रकाश' करता और 'मुख्य'

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष।
वायुरेष पृथिवी रयि र्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥
अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥

प्राण ही अग्नि रूप है, प्राण ही सूर्य के रूप में प्रकाश दे रहा है। प्राण ही बादल के रूप में जल बरसा रहा है। प्राण ही धन के रूप में दान दे रहा है। प्राण ही वायु के रूप में जीवन दे रहा है। प्राण ही पृथिवी के रूप में आश्रय दे रहा है, प्राण ही रयि

के रूप में भोग्य जगत् को उत्पन्न कर रहा है। विश्व में मरणधर्मा जो 'सत् असत्' (चेतन-जड़) है, जो अमरधर्मा 'अमृत' है—वह सब प्राण है।

रथ की नाभि में जैसे अरे जुड़े रहते हैं, वैसे प्राण में सब स्थित हैं। ऋक्, यजु, साम, अर्थात् सम्पूर्ण 'ज्ञानकाँड एवं यज्ञ अर्थात् सम्पूर्ण 'कर्मकाण्ड' प्राण की साधना के लिए ही है। 'क्षत्र' शक्ति (भौतिक शक्ति) और 'ब्रह्म' शक्ति (आत्मिक शक्ति)—दोनों प्राण शक्ति पर ही आश्रित हैं।

प्राण की स्तुति

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति॥

पृथिवी, द्यौ, अन्तरिक्ष—तीनों लोकों में सब कुछ प्राण के वश में है। हे प्राण ! जैसे माता पुत्र की रक्षा करती है ऐसे ही तू हमारी रक्षा कर। हमें 'श्री' भौतिक ऐश्वर्य 'प्रज्ञा' मानसिक और आत्मिक ऐश्वर्य प्रदान कर। 'प्राण' का अर्थ ब्रह्म शक्ति है।

तीसरा प्रश्न—६ भाग में

कौशल्य ने पूछा—(१) भगवन् ! यह "प्राण" कहां से उत्पन्न होता है ? (२) प्राण इस शरीर में किस प्रकार आता है ? (३) प्राण शरीर में किस प्रकार विभक्त होकर स्थित है ? (४) प्राण किस प्रकार शरीर में से निकलता है ? (५) प्राण बाह्य संसार को किस प्रकार धारण करता है ? और (६) प्राण आत्मा को इस शरीर में किस प्रकार धारण करता है ?

ऋषि ने उत्तर दिया—तू नें एक साथ कई प्रश्न पूछ डाले, पर तू ब्रह्मिष्ठ है, इसलिए तेरे इन प्रश्नों का उत्तर देता हूं—

उत्तर—आत्मा से प्राण : मन के द्वारा आत्मा शरीर में

(१) आत्मन एष प्राणो जायते। (२) यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृते नायात्यस्मिञ्छरीरे॥

पहले दो प्रश्नों का उत्तर है (१) प्राण की उत्पत्ति "आत्मा" से होती है। जैसे पुरुष के साथ छाया लगी है, इसी प्रकार "आत्मा" के साथ "प्राण" लगा है। (२) मनकी वासनाएं ही आत्मा को शरीर में लाती हैं और आत्मा के साथ ही शरीर में प्राण चलने लगता है।

शरीर में प्राण पांच प्रकार से विभक्त

(३) प्रश्न के तीसरे भाग का उत्तर:—शरीर में प्राण पांच प्रकार से विभक्त हैं (क) गुदा और उपस्थ में "अपान" (ख) चक्षु, श्रोत्र, मुख, नासिका में स्वयं "प्राण" (ग) शरीर के मध्य भाग में "समान" (घ) हृदय से लेकर सम्पूर्ण रक्तवाहिनी नाड़ियों में "व्यान"—इन नाड़ियों में मुख्य १०१ हैं, फिर प्रत्येक नाड़ी की १००-१०० शाखाएं हैं, इन शाखाओं में से एक-एक से ७२-७२ हजार प्रतिशाखाएं निकली हैं। (ङ) हृदय से जो नाड़ी ऊर्ध्वदेश—मस्तिष्क को जाती है, वह "उदान" है।

उदान का आत्मा से सम्बन्ध

(४) प्रश्न के चौथे भाग का उत्तर ऋषि देते हैं कि उदान प्राण द्वारा आत्म शरीर से निकलता है। जब तक शरीर में तेज रहता है, तब तक आत्मा उदान की सहायता से शरीर में ही रहता है।

शरीर में से प्राण का बहिर्गमन

(५) प्रश्न के पांचवें भाग का उत्तर—जो प्राणशक्ति शरीर में उदान का काम करती है, वही बाह्य जगत् में तेज का काम करती है। जैसे बाह्य जगत् में जब तेज अस्त होने लगता है, तब सारी सृष्टि मानो मर कर नये दिन की तैयारी करने लगती है, वैसे शरीर का तेज जब शान्त हो जाता है, तब उदान की सहायता से आत्मा पुण्य कर्मों के कारण पुण्य लोक में, पाप कर्मों के कारण पाप लोक में और उभय कर्मों के कारण मनुष्य लोक में जाता है।

प्राण आत्मा को धारण करता है

(६) प्रश्न के छटे भाग का उत्तर—प्राण की दो शक्तियां हैं—शारीरिक और मानसिक। शारीरिक शक्ति का नाम "तेज" है और मानसिक शक्ति का नाम "चित्त" है। प्राण शरीर से कूच करते हुए अपने शारीरिक (तेज), मानसिक (चित्त) और आत्मिक (आत्मा)-इन तीनों आधारों को साथ लेकर चल देता है।

इस प्रकार प्राण आत्मा को इस शरीर में "तेज" और "चित्त" के द्वारा धारण करता है।

इस प्रश्न के उत्तर के उपसंहार रूप में ऋषि पिप्पलाद कहते हैं-

प्राण विद्या के ज्ञान से अमृतत्व की प्राप्ति

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पंचधा।
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति॥

प्राण के विषय में जो इसकी उत्पत्ति, इसके विस्तार, इसके भिन्न-भिन्न पाँच स्थान, किस प्रकार संसार में व्याप्त हैं, पिंड और ब्रह्मांड में किस प्रकार तादात्म्य स्थापित किये हुए हैं—इन सब विषयों को जानता है वह अमृत को चख लेता है।

चौथा प्रश्न—कौन सोता, जागता इत्यादि...... है ?

गार्ग्य ब्रह्मचारी का प्रश्न—(१) भगवन् ! इस पुरुष में कौन सोता है, (२) कौन जागता है, (३) कौन स्वप्न देखता है, (४) किसे सुख होता है, और (५) यह सब किसमें प्रतिष्ठित है ?

उत्तर–इन्द्रियां सोती, प्राण जागता इत्यादि...... है

पिप्पलाद ऋषिका उत्तर—सब इन्द्रियां मन में सिमट कर सोती हैं, पाँचों प्राणरूपी अग्नियाँ सदा जागती हैं, मन ही स्वप्न देखता है, जब जीवात्मा निद्रा की दशा में सतोगुण-प्रधान होता है, तब वह तेज युक्त हो स्वप्न नहीं देखता और उसे इस शरीर में ही सुख

अनुभव होता है। प्रश्न के पांचवें भाग का उत्तर देते हुए ऋषि कहते हैं कि यह सब आत्मा में प्रतिष्ठित है।

जैसे पक्षी वृक्ष पर, वैसे सब आत्मा में

स यथा सोम्य वयांसि वासो वृक्षं संप्रतिष्ठन्ते।
एवं हवैतत्सर्वं पर आत्मनि तिष्ठति॥

हे सौम्य ! जैसे पक्षी वृक्ष में वास बना लेते हैं, उसमें प्रतिष्ठित रहते हैं, इसी प्रकार इन्द्रियाँ, मन, प्राण इस आत्मा में ही प्रतिष्ठित हैं।

विज्ञानमय आत्मा की गरिमा

विज्ञानात्मासहदेवैश्च सर्वैः प्राणाभूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविशेति॥

हे सौम्य ! जो विज्ञानमय आत्मा उस सर्वोच्च अनादि-अनन्त ब्रह्म को जान लेता है, जिसमें समस्त प्राण और भूत ठहरे हुए हैं, वह सर्वज्ञ (आत्मिक शक्ति का पूर्ण ज्ञाता) हो जाता है और पूर्ण ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है।

पांचवां प्रश्न—ओंकारध्यान का फल

सत्यकाम ने पूछा, हे भगवन् ! जो व्यक्ति जीवन भर "ओंकार" का ध्यान करे, वह ऐसे ध्यान से किस लोक को जीत लेता है ?

पिप्पलाद ऋषि का उत्तर—

ओंकार से "पर" "अपर" ब्रह्म का ज्ञान

तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद् विद्वानेतेनैवायतनेन एकतरमन्वेति ॥२॥

ऋषि ने कहा—हे सत्यकाम ! ब्रह्म "पर" और "अपर" है। "ओंकार" में ये दोनों उपस्थित हैं। जो विद्वान् इस "ओंकार" की उपासना करता है, वह दोनों की इसी से प्राप्ति करता है।

"ओंकार" की एक मात्रा का फल

ऋषि कहते हैं जो "ओंकार" की एक मात्रा का ध्यान करते हैं, वह शीघ्र जगत् में सुख-सामग्री-सम्पन्न हो जाते हैं। यह एक मात्रा का ध्यान ऋग्वेद के ज्ञान सदृश हैं जिससे वह उस "मनुष्यलोक" में जाता है जहां "तप" "ब्रह्मचर्य" "श्रद्धा" से युक्त हो परमात्मा की महिमा का अनुभव करता है ॥३॥

ओंकार की दो मात्राओं का फल

अगर साधक ओंकार की दो मात्राओं का ध्यान करता है, तब वह ऋक् के साथ यजुर्वेद के मनन से अन्तरिक्ष को—सोमलोक को—प्राप्त होता है और मानसिक शान्ति प्राप्त कर और 'द्विमात्रा' की विभूति का अनुभव कर फिर इस संसार में आ जाता है ॥४॥

ओंकार की तीन मात्राओं की उपासना का फल

जो भक्त पुरुष "ओंकार" की तीन मात्राओं, तीनों अक्षरों से, परमपुरुष का ध्यान करता है, वह सूर्य के समान तेज युक्त हो जाता है। जैसे साँप कैंचली को छोड़ देता है, ऐसे ही वह पाप से विमुक्त हुआ ऋक्, यजु के साथ सामवेद के ज्ञान से "ब्रह्म लोक" से पहुंच जाता है। वह जीव के इस शरीर से अत्यन्त परे संसाररूपी पुरी में शयन कर रहे पुरुष—पर ब्रह्म—को देख लेता है।

ओंकार की तीनों मात्राओं की उपासना से उपासक "शान्त" "अजर" "अमृत" "अभय" हो "परब्रह्म" को प्राप्त कर लेता है।

छठा प्रश्न—१६ कलाएं क्या और कहाँ हैं ?

ब्रह्मचारी शिष्य सुकेशा ने पूछा—"भगवन् सोलह कलाओं वाला पुरुष क्या है और कहाँ हैं ?"

इसी शरीर में १६ कलाएं हैं

इहैवान्तः शरीरे सौम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः

प्रभवन्तीति ॥२॥ स ईक्षां चक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्राते उत्क्रान्तो भविष्यामि, कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥३।१।२।

पिप्पलाद ऋषि नें उत्तर दिया, हे सौम्य ! वह पुरुष जिसमें सोलह कलाओं का प्रादुर्भाव होता है, इसी शरीर के भीतर है। जीवात्मा ने चिन्तन किया कि किस के निकल जाने से मैं शरीर में से निकल जाऊंगा, किसके शरीर में प्रतिष्ठित होने से प्रतिष्ठित हो जाऊंगा ?

१६ कलाओं के नाम

स प्राणमसृजत प्राणात् श्रद्धां खं वायु र्ज्योतिराप: पृथिवीन्द्रियम् ।
मनोऽन्नमन्नाद् वीर्यं तपो मंत्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ।३।

पुरुष (ब्रह्म) नें पहले प्राण का सर्जन किया। प्राण द्वारा श्रद्धा—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मंत्र, कर्म, लोक और नाम—इन १६ कलाओं का सर्जन किया। इन सोलहों कलाओं से ही 'ब्रह्मांड' और 'पिंड' का निर्माण होता है।

क्योंकि इन १६ कलाओं से 'ब्रह्मांड' तथा 'पिंड' का निर्माण होता है, अतः कल्पना की गयी है कि मानो ये १६ कलाएं उसी ब्रह्म का शरीर हैं। इन कलाओं वाला ब्रह्म कहीं बाहर थोड़े ही रहता है। इसी मनुष्य के देह ही में तो १६ कलाओं सहित वह ब्रह्म वास करता है, फिर उसे बाहर क्यों ढूंढ़ने जाना ! कला का अर्थ है अंश है। ब्रह्म की यदि एक पुरुष के रूप में कल्पना करें, तो ये १६ उसके अंश हैं। पर ब्रह्म इन १६ कलाओं से भी बहुत अधिक महान् है। ये कलाएं तो उसका अत्यन्त स्वल्प अंश हैं।

१६ कलाओं वाले इस पुरुष को जानो

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥४॥

जैसे रथ की नाभि में अरे लगे होते हैं। ऐसे ही जिस ब्रह्म में ये कलाएं प्रतिष्ठित हैं उस जानने योग्य पुरुष (ब्रह्म) का ज्ञान प्राप्त करो। ऐसा करने से तुम्हें मृत्यु किसी प्रकार व्यथा नहीं देगी।

पिपलाद ऋषि का अन्तिम वचन

इस उपदेश को समाप्त करते हुए पिप्पलाद ऋषि ने उन छःओं ब्रह्मचारियों और जिज्ञासु शिष्यों से कहा "मैं उस" परब्रह्म के विषय में इतना ही जानता हूं। इससे परे वह नहीं है।

शिष्यों द्वारा ऋषि का परम धन्यवाद

तब इन शिष्यों ने ऋषि की स्तुति की और कहा :—

त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति।
नमः परम ऋषिभ्योनमः परम ऋषिभ्यः ॥५॥

भगवन्! आप ही हमारे पिता हैं। आप ही हमें अविद्या रूपी नदी से पार करने वाले हैं। आप परम ऋषि हैं, आपको बार-बार नमस्कार हो॥

मुण्डक उपनिषद्

'परा विद्या' से ब्रह्मदर्शन (१)

यत्तदद्रश्यमग्राह्यमगोत्र मवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥१॥

वह ब्रह्म इन इन्द्रियों से देखा, ग्रहण नहीं किया जा सकता। उसका कोई गोत्र, वंश नहीं, वह आँख-कान-हाथ-पांव रहित है। वह नित्य, विभु, सब जगह पहुंचा हुआ, सूक्ष्म, वृद्धि-ह्रास रहित और

सब भूतों का कारण है। धीर 'परा विद्या' अर्थात् ब्रह्म विद्या से उस ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं।

ब्रह्म से विश्व का प्रादुर्भाव (२)

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णाते च, यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केश लोमानि तथाक्षरात् संभवतीह विश्वम्॥२।

जैसे मकड़ी अपने शरीर के भीतर से जाले का सृजन करती है, और फिर उसे समेट लेती है, जैसे पृथ्वी से वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं, जैसे जीवित पुरुष के शरीर से केश-लोम निकलते हैं, इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म के प्रकृति रूपी शरीर से विश्व का प्रादुर्भाव होता हैं।

ब्रह्म का तप 'ज्ञान' (३)

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः
तस्माद् एतद् ब्रह्म नाम रूप मन्नं च जायते॥

वह सर्वज्ञ है, सब जगह विद्यमान है, ज्ञान ही उसका तप है। इस तप के विकास से ही बृहत् नाम रूप वाला जगत् और यह स्थूल प्रकृति जिससे सब व्यवहार चल रहे हैं, उत्पन्न होते हैं।

(४) तप और श्रद्धा मुख्य साधन

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसा भैक्षचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुष ह्यव्ययात्मा॥४॥

जो शान्त-चित्त विद्वान् जंगल में भिक्षा वृत्ति से जीवन निर्वाह करते हुए तप और श्रद्धा पूर्वक रहते हैं, वे सब मलों से शुद्ध होकर देवयान द्वारा वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ अमृत, अव्ययात्मा पुरुष है।

(५) ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाए

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेद माया न्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि गच्छेत् समित् पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥५॥

सकाम भाव से किये गये कर्मों से प्राप्त सुख ऐश्वर्य की परीक्षा कर के विद्वान् पुरुष के हृदय में संसारी विषयों से उदासीनता आ जाती है। तब वह समझ जाता है कि नाश होने वाले पदार्थों से अविनाशी ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए उस ब्रह्म को जानने के लिए हाथ में समिधा लेकर वेदज्ञ और ब्रह्म के सच्चे उपासक गुरु की सेवा में ही जाए।

(६) गुरु शिष्य का स्वागत करे

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥६॥

इस प्रकार श्रद्धापूर्वक जब कोई जिज्ञासु शान्तचित्त से इन्द्रियों का संयम करके गुरु सेवा में आये तब वह गुरु तत्त्व सहित ब्रह्म विद्या का उपदेश इस प्रकार दे जिससे शिष्य को उस अविनाशी पुरुष का ज्ञान हो जाये।

(७) समस्त विश्व ब्रह्म की शक्ति से

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥७॥

ब्रह्म की शक्ति से ही समुद्र और विभिन्न रूप की नदियाँ बहती हैं और पर्वत खड़े हुये हैं। ब्रह्म की शक्ति से ही विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों में रस उत्पन्न होता है। इस ब्रह्म की शक्ति पर ही पंच महाभूत ठहरे हुये हैं। इस विश्व का अन्तरात्मा वही ब्रह्म है।

(८) अविद्या की गांठ कब कट जाती है ?

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं
विकिरतीह सोम्य ॥८॥

हे सोम्य! यह विश्व उसी पुरुष में है। कर्म, तप, ब्रह्म, और

परम अमृत—सब उसी में है। हृदय—गुहा में छिपे हुए उसे जो जान लेता है, वह अविद्या की गांठ को काट देता है।

(९) वही ब्रह्म तुझे बींधना है

यदर्चिमद्यणुभ्योऽणु च यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च।
तदेतदुक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङमनः।
तदेतत्सत्यं तदमृतं तद् वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ॥९॥

हे सौम्य ! जो प्रकाशमान है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है पर जिसमें स्थूल से भी स्थल लोक निहित हैं, वही अक्षर ब्रह्म है, वही प्राण है, वही वाणी मन का प्रेरक और सत्य स्वरूप है, वही अमृत है, सोम्य ! वही तेरा लक्ष्य है, उसी को तूने बींधना है।

(१०) उपनिषद् रूप धनुष से ब्रह्म को बींध

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं संधयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य बिद्धि ॥

हे सोम्य ! "उपनिषद्" रूप महान् अस्त्र रूप धनुष को ग्रहण कर 'उपासना' रूप तेज शर का सन्धान करे, पूरे भाव से चित्त द्वारा इस धनुष को खींचकर 'अक्षर' रूप लक्ष्य का वेध कर।

(११) ओंकार रूपी धनुष से ब्रह्म को लक्ष्य बनाओ

प्रणवो धनुः शरो आत्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥११॥

प्रणव (ओंकार) धनुष है, आत्मा शर है, ब्रह्म लक्ष्य है। प्रमाद रहित होकर इस लक्ष्य का वेध कर, फिर जैसे शर लक्ष्यमय हो जाता है, वैसे आत्मा ब्रह्म में तल्लीन की ओर ही जाने वाला हो जायगा ॥११॥

वही अमृत का पुल है

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ अत्मानमन्या वाचोविमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥१२॥

मन और प्राण सहित सारा विश्व उसी में ओत-प्रोत है। उसी एक आत्मा को पहिचान, अन्य बातें करना छोड़ दो। दुःखमय भव-सागर से पार होकर अमृत तक पहुंचने का यही एकमात्र मार्ग है ॥१२॥

ओ३म् का ही ध्यान करो

ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥१३॥

उस ब्रह्म का ओंकार के रूप में ध्यान करो, तुम्हारा कल्याण होगा, अन्धकार से पार जाने का यही साधन है ॥१३॥

हृदय की गाँठें कट जाती हैं

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥१४॥

हृदय में फँसी हुई सब प्रकार की गाँठें दूर हो जाती हैं। सब प्रकार के संशय कट जाते हैं। व्यर्थ के अनेक प्रकार के कर्मों का अन्त हो जाता है जब उसे इस जगत् के दोनों किनारे आत्मिक दृष्टि से दीखने लगते हैं ॥१४॥

वह निष्कलंक ब्रह्मकोश

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्म विदो विदुः। १५॥

इस सांसारिक स्वर्ण के खजाने से दूर एक निर्मल और निष्कलंक ब्रह्म का खजाना है। वह सर्वथा शुभ्र और ज्योतियों का ज्योति है। आत्मविद् ही उसे जान सकते हैं ॥१५॥

वही सर्वत्र है और सबसे श्रेष्ठ है

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥१६॥

अमृतरूप ब्रह्म ही सामने है, वही दक्षिण, उत्तर और पीछे है तथा ऊपर व नीचे उसी का विस्तार है, इस सारे विश्व में उसी का प्रसार है और वही सबसे श्रेष्ठ है ॥१६॥

दो पक्षी एक वृक्ष पर

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्यो अभिचाकशीति ॥१७॥

एक ही वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं जिनके सुन्दर पंख हैं, साथ-साथ जुड़े हुए हैं, एक दूसरे के मित्र हैं। इनमें से एक वृक्ष के फल को स्वाद से खा रहा है, दूसरा बिना खाये सब कुछ देख रहा है। जीवात्मा और परमात्मा दो पक्षी हैं, प्रकृति ही वृक्ष है, कर्मफल ही वृक्ष का फल है ॥१७॥

जीव कब शोकमुक्त हो जाता है ?

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥१८॥

इस एक सदृश प्रकृति रूपी वृक्ष के फल खाने में फंसा हुआ जीवात्मा अपने को निर्बल और बेबस समझता है और मोह ग्रस्त हो जाता है। अपने समीप बैठे दूसरे को—जो इसका स्वामी है—जब जीवात्मा देख लेता है और उसकी महिमा को जान लेता है तब वह शोकमुक्त हो जाता है ॥१८॥

ब्रह्म की परम समीपता

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥१९॥

जब जीवात्मा द्रष्टा रूप में उस प्रकाशमान, विश्वकर्त्ता, सबके स्वामी और विश्व के कारण रूप ब्रह्म को देख लेता है, तब वह विद्वान् पुण्य पाप दोनों से मुक्त होकर, शोक मोह से पृथक् हो, ब्रह्म की परम समीपता को प्राप्त कर लेता है ॥१९॥

ब्रह्मविद् का क्रीडाक्षेत्र आत्मा ही

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतै र्विभाति विजानन् विद्वान् भवति नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥२०॥

ब्रह्मवित् जब यह अनुभव कर लेता है कि ब्रह्म की जीवन शक्ति ही सब सृष्टि में प्रकाशित हो रही है, फिर वह अधिक नहीं बोलता। वह अपनी आत्मा में ही खेलता है, आत्मा में ही रमण करता है, उसका जीवन क्रियाशील हो जाता है और ब्रह्म वेत्ताओं में वह श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त करता है ॥२०॥

सत्य की ही जीत होती है

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा,
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥२१॥

सत्य की ही जीत होती है, असत्य की नहीं, दिव्य जीवन का मार्ग सत्य से बना है। आप्त काम ऋषि इसी मार्ग द्वारा सत्य के परम धाम तक पहुंचते हैं ॥२१॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा,
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हिशुभ्रः,
अयं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषाः ॥२१॥

वह आत्मा सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मचर्य से प्राप्त होता है। शरीर के भीतर ही वह शुभ्र ज्योति के रूप में विद्यमान है।

यत्नशील व्यक्ति राग द्वेषादि दोषों का क्षय करके हो उसे देख पाते हैं ।।२१।।

हृदय गुहा में दर्शन

**बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ।।२२।।**

वह स्वयं महान् है, दिव्य है, उसके रूप का ध्यान नहीं किया जा सकता, वह दूर से दूर और निकट से निकट है, अन्तरात्मा की गुहा में ही देखा जा सकता है ।।२२।।

ज्ञान प्रसाद से दर्शन

**न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञान प्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।।२३।।**

वह आँख का विषय नहीं है, दूसरे की वाणी के उपदेश से वह नहीं मिलता, इन्द्रियों से भी उसका ग्रहण नहीं होता, तप अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के क्रिया-कर्मों से भी वह हाथ नहीं आता। एक निश्चित ज्ञान के मार्ग से ही शुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति उस निष्कल ब्रह्म का ध्यान करता हुआ उसे देख पाता है ।।२३।।

आत्मज्ञानी ही पूजा के योग्य है

**यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेत् भूतिकामः ।।२४।।**

अपने आत्मा को शुद्ध करके आत्मज्ञानी जिस स्थिति में रहने का विचार करता है और जो कामना करता है, उस स्थिति को वह पहुंच जाता है और उसकी वह कामना पूरी हो जाती है। इसलिये अपनी उन्नति चाहने वाले को ऐसे आत्मज्ञानी विद्वान् के चरणों में ही जाना चाहिए ।।२४।।

कृतात्मा कामनाओं से ऊपर उठ जाता है

कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र ।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥२५॥

कामनाओं को ही सब कुछ मानने वाला व्यक्ति उन कामनाओं के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होता है। कामनाओं को वश में करने वाले कृतात्मा व्यक्ति की तो सब कामनाएं यहीं पूरी हो जाती हैं ॥२५॥

आत्मा जिसे वर लेता है

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥२६॥

भाषणों, तर्क, वितर्क अथवा बहुत कुछ पढ़ने सुनने से इस आत्मा के दर्शन नहीं होते। जिसे ही यह वर लेता है, उसके सामने ही यह अपने स्वरूप को खोल कर रख देता है ॥२६॥

निर्बल आत्म दर्शन नहीं कर सकता

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात् ।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वान् तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥२७॥

बलहीन, प्रमादी अथवा बिना लक्ष्य के तपस्या करने वाला व्यक्ति आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। जो बलवान् है, प्रमादी नहीं है और किसी उद्देश्य के लिये तपस्या करता है—इन उपायों से यत्न करने वाला विद्वान् ब्रह्म में स्थित आनन्द के दर्शन कर पाता है ॥२७॥

आनन्द धाम में प्रवेश

संप्राप्यैन मृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः ।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीराः युक्तात्मानः सर्वमेवा विशन्ति ॥२८॥

ज्ञान से भरपूर, आत्मा के उपासक, राग द्वेष रहित, शान्त मन

वाले ऋषि ही ब्रह्म को प्राप्त कर पाते हैं। सर्वत्र व्यापक ब्रह्म को सब ओर से प्राप्त करके ऐसे धीर पुरुष उसी के आनन्द धाम में प्रवेश करते हैं ॥२८॥

ब्रह्म लोक की प्राप्ति

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्म लोकेषु परान्तकाले परामृताः परि मुच्यन्ति सर्वे ॥२९॥

वैदिक सिद्धान्तों और भौतिक विद्याओं द्वारा जिन्होंने अपने लक्ष्य को ठीक प्रकार से जान लिया है और संसार में विरक्त भाव से रहते हुए कर्मयोग द्वारा जिन्होंने अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर लिया है, ऐसे व्यक्ति मृत्यु आने पर अमृत पद को प्राप्त करते हुए सब बन्धनों से मुक्त हो ब्रह्म लोक में प्रवेश करते हैं ॥२९॥

१५ कलाओं से मुक्त आत्मा

गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥३०॥

ऐसे विमुक्त व्यक्ति की पन्द्रहों कलाएं (पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां और पाँच प्राण) समाप्त हो जाती हैं, और १६ वां निष्कल आत्मा रह जाता है, उसकी इन्द्रियां अपने कारणों में लीन हो जाती हैं, कर्म भी निःशेष हो जाते हैं, यह ज्ञानयुक्त आत्मा उस अविनाशी परमात्मा के समीपस्थ हो जाता है ॥३०॥

नाम रूप से छुटकारा

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपात् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥३१॥

जैसे बहती हुई नदियां अपना नाम रूप छोड़कर समुद्र में अस्त हो जाती हैं, इसी प्रकार विद्वान् विमुक्त पुरुष नाम रूप से छूटकर दिव्य स्वरूप परब्रह्म के समीप हो जाता है ॥३१॥

ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म सदृश हो जाता है

स योह वै तत्परमं ब्रह्म वेद,
ब्रह्मैव भवति नास्या ब्रह्म वित् कुले भवति ।
तरति शोकं तरति पाप्मानं,
गुहा ग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥३२॥

उस परम ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म के सदृश ही, अर्थात् उसके अत्यन्त निकट हो जाता है। उसके कुल में कोई भी ब्रह्म को न जानने वाला नहीं रहता। शोक और पाप को तैरता हुआ वह हृदय में पड़े बुरे संस्कारों की गाँठों से मुक्त हो अमृत पद को प्राप्त करता है ॥३२॥

ब्रह्म विद्या के अधिकारी कौन ?

क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः,
स्वयं जुह्वत एकर्षि श्रद्धयन्तः ।
तेषामेवैतां ब्रह्म विद्यां वदेत,
शिरो व्रतं विधि वद्यैस्तु चीर्णम् ॥३३॥

जिनका जीवन क्रियाशील है, वैदिक ज्ञान को सुनने सुनाने वाले हैं, ब्रह्म निष्ठ हैं, श्रद्धा पूर्वक ब्रह्म वेत्ता ऋषि के चरणों में स्वयं उपस्थित रहते हैं, ऐसे व्यक्तियों को ही इस ब्रह्म विद्या का उपदेश देना चाहिए। इन्होंने जीवन में व्रत लिया होता है और इस व्रत का ठीक प्रकार से यह पालन करते हैं।

प्राचीन काल में अंगिरा ऋषि ने उपर्युक्त उपदेश दिया था। व्रत हीन व्यक्ति इसका अधिकारी नहीं है। इन परम ऋषियों को नमस्कार हो ॥३३॥

———

तैत्तिरीय उपनिषद्

ब्रह्म को नमस्कार मेरी रक्षा करो

ओ३म् । शंनो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा शं न इन्द्रो बृहस्पति शंनो विष्णुरुरुक्रमः ।। नमो ब्रह्मणे, नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि, तन्मावतु । तद् वक्तारमवतु, अवतु माम्, अवतु वक्तारम् ।।१।।

मित्र, वरुण, अर्थमा, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णसु, उरुक्रम (महा-पराक्रमी)—ये सब नाम परमात्मा के विभिन्न गुणों के हैं। परमात्मा के ये सब हमारे लिए कल्याणकारी हों। ब्रह्म को नमस्कार, हे वायो (ब्रह्म) तुझे नमस्कार, तू ही प्रत्यक्ष, साक्षात् ब्रह्म है। मैं तुझे ही प्रत्यक्ष मान ब्रह्म कहूंगा, ऋत कहूंगा, सत्य कहूंगा। हे ब्रह्म मेरी रक्षा करो, उपदेश देने वाले आचार्य की रक्षा करो। मेरी रक्षा करो, ब्रह्म का उपदेश करने वाले गुरु की रक्षा करो ।।१।।

गुरु-शिष्य की प्रार्थना

सहनौ यशः । सहनौ ब्रह्मवर्चसम् ।।२।।

गुरु शिष्य दोनों मिलकर कहते हैं—हम दोनों का यश एक साथ बढ़े, हम दोनों का ब्रह्म-तेज एक साथ बढ़े ।।२।।

शिष्य की कामना

स मेन्द्रो मेधया स्पृणो तु । अमृतस्य देव धारण भूयासम् । शरीरं मे विचर्षणाम् । जिह्वा मे मधुमत्तम । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः । श्रुतं मे गोपाय ।।३।।

वह इन्द्र मेधा से मेरा पालन करे। मैं अमृत के दिव्य गुणों को

धारण करूँ। मेरा शरीर बलवान् हो। मेरी जिह्वा मधु में सनी हो। कानों से मैं खूब सुनूँ हे इन्द्र! तू ज्ञान का कोश है, मेधा से चारों ओर से घिरा रहूं। मैं जो कुछ सुनूं उसकी रक्षा भी कर सकूं—ऐसी मुझे शक्ति दे ॥३॥

"ओ३म्" ही सब कुछ है

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्। ओमित्येतदनुकृति ह स्म, वा अप्यो श्रावये त्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओम् शोमिति शास्त्रारिम शं सन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रणीति। ओमित्यग्नि होत्र मनु जानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मो पाप्नवा नीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥४॥

'ओम्' ही ब्रह्म है, 'ओम्' ही सब कुछ है, संसार 'ओम्' की ही अनुकृति है, शिष्य 'ओम्' कहकर ही गुरु को पाठ सुनाता है, 'ओम्' कहकर साम का गान करता है। शास्त्र पाठ 'ओम्' से और समाप्ति शमोम्'—'शोम्' से होती है। अध्वर्यु 'ओम्' कहकर यजुर्वेद का पाठ करता है, ब्रह्मा 'ओम्' से परमात्मा की स्तुति करता है, और 'ओम्' कह कर ही अग्नि होत्र प्रारम्भ करने की अनुज्ञा देता है। विद्वान् (ब्राह्मण) प्रवचन का प्रारम्भ 'ओम्' के प्रयोग से करता है और कहता है कि मैं ब्रह्म को प्राप्त करूं। इस प्रकार वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥४॥

(११) कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ स्वाध्याय प्रवचन न छोड़े

ऋतं च स्वाध्यायं प्रवचने च। सत्य च स्वाध्याय प्रवचने च। तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च। दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। शमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अनयश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्याय प्रवचने च। अतिथत-

यश्चं स्वाध्याय प्रवचने च । मानुषं च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजा च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्याय प्रवचने च ॥५॥

(१) 'ऋत' (२) 'सत्य' (३) 'तप' (४) 'दम' (५) 'शम' (६) 'अग्न्याधान' (७) 'अग्नि होत्र' (८) 'अतिथि सेवा' (९) 'मनुष्य सेवा' (१०) 'प्रजापालन' (११) 'सन्तान'—ये सब कर्त्तव्य पालन करता हुआ 'स्वाध्याय' (स्वयं अध्ययन करना) और 'प्रवचन' (दूसरों को अपने स्वाध्याय से उपदेश देना)—इन दोनों कार्यों को कभी न छोड़े ॥५॥

प्रतिदिन ये छः संकल्प करे

(१) अहं वृक्षस्यरेरिवा । (२) कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। (३) ऊर्ध्व पवित्रो वाजिनीव, (४) स्वमृत मस्मि। (५) द्रविणं सुवर्चसम् (६) सुमेधा अमृतोऽक्षितः। इति त्रिशंकोर्वेदानुवचनम् ॥६॥

(१)मैं इस संसार रूपी वृक्ष पर बार-बार चढ़ने वाला हूं (२) पर्वत की चोटी के सदृश मेरी कीर्ति ऊंची है (३) सूर्य-रश्मि की तरह मैं ऊंचा और पवित्र हूं। (४) मैं अमृत रूप हूं। (६) यही मेरा धन है और यही मेरी उज्ज्वल शक्ति है (७) मैं तीक्ष्ण बुद्धि वाला, अमृत रूप हूं और मेरी आत्मा 'अक्षित' कभी नाश होने वाली नहीं है।

त्रिशंकु ऋषि के ये वेद के अनुकूल वचन हैं ॥६॥

आचार्य का शिष्य के प्रति दीक्षान्त उपदेश

वेदमनूच्याचर्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्नप्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥७॥

वेद विद्या पढ़ा चुकने के अनन्तर आचार्य शिष्य को अनुशासन के रूप में दीक्षान्त भाषण देता है।

सत्य बोलना। धर्माचरण करना। स्वाध्याय से प्रमाद मत करना। आचार्य को जो प्रिय हो, वह दक्षिणा रूप में उसे देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना और प्रजा के सूत्र को मत तोड़ना। सत्य से प्रमाद न करना, धर्माचरण से प्रमाद न करना, जिस बात से तुम्हारा भला हो, उससे प्रमाद न करना, अपनी विभूति बढ़ाने में प्रमाद मत करना, स्वाध्याय और प्रवचन में प्रमाद मत करना ॥७॥

देव पितृ कार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्य-वद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नोइतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानित्वयोपास्यानि नो इतराणि॥८॥

संसार में जो 'देव' गुणों में बड़े हैं और जो 'पितर' आयु व सम्बन्ध में बड़े हैं, उन के प्रति कर्त्तव्य पालन में प्रमाद न करना। माता की आज्ञा का पालन करना। पिता, आचार्य, अतिथि इन्हें पूज्य समझना। हमारे जो निन्दा रहित कर्म हैं। उन्हीं का सेवन करना, दूसरों का नहीं। हमारे जो अच्छे आचरण हैं, उन्हीं की तुम उपासना करना, अन्यों की नहीं॥८॥

ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसित व्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भियादेयम्। संविदा देयम्॥९॥

हमसे अधिक श्रेष्ठ विद्वान् जहाँ हों। उनके उपदेशों और उन की शिक्षाओं को ध्यान से सुनना और उस पर विश्वास करना। श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, अपने कल्याण के लिए देना, लोक-लाज से देना, भय से देना और प्रेम से भी देना॥९॥

अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्तिविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः संमशिनिः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्त्तेरन् तथा तत्र वर्त्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः । एष वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमु चैतदुपास्यम् ।।१०।।

अगर किसी काम में सन्देह पैदा हो जाए, अथवा 'धर्माचार' व 'लोकाचार, के बारे में सन्देह खड़ा हो जाए, तो तुम्हारे आस-पास धर्म कार्य में स्वतः प्रवृत्त, प्रेरणा वश प्रवृत्त, अरुक्ष स्वभाव के, सब पहलुओं पर विचार करने वाले ब्राह्मण (विद्वान्) जैसे बरतें, वैसा ही तुम बरतना। यही आदेश है, यही उपदेश है, यही वेद और उपनिषद् के सार है, यही अनुशासन हमारी ओर से है, ऐसा ही आचरण करना, ऐसा ही अनुष्ठान करना ।।१०।।

गुरु शिष्य—दोनों का एक साथ लक्ष्य

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु, सहवीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।।११।।

हम दोनों, अर्थात्, गुरु-शिष्य की परमात्मा साथ-साथ रक्षा करे, हम दोनों साथ-साथ संसार के पदार्थों से लाभ उठाएं, हम दोनों साथ-साथ बल की वृद्धि करें, हम दोनों का अध्ययन तेजयुक्त हो, हम दोनों आपस में कभी द्वेष न करें ।।११।।

पंच कोश

स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः । अन्योऽन्तर आत्मामनोमयः । अन्योऽन्तर अतामा विज्ञानमयः । अन्योऽन्तर आत्माऽनन्दमयः ।।१२।।

यह पुरुष अन्य रस युक्त है। इस शरीर का आत्मा एक अन्य शरीर है जिसे "प्राणमय कोश" कहते हैं। इस "प्राणमय" शरीर

का आत्मा एक अन्य शरीर है जिसे "मनोमय कोश" कहते हैं। इस "मनोमय" कोश का आत्मा एक अन्य शरीर है जिसे "विज्ञानमय कोश" कहते हैं। इस "विज्ञानमय कोश" का आत्मा एक अन्य शरीर है जिसे "आनन्दमय कोश" कहते हैं ॥१२॥

आनन्द का स्वरूप

यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्, न बिभेति कुतश्चन ॥१३॥

वाणी जहाँ से लौट आती है, मन जिसे प्राप्त नहीं कर सकता, उस आनन्द रूप ब्रह्म को जो जान लेता है, वह कभी भयभीत नहीं होता ॥१३॥

श्वेताश्वेतर उपनिषत्

प्रणव से "जीव" "ईश्वर" दोनों का ग्रहण

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यतेनैव च लिंगनाशः ।
सभूय एवेन्धनयोनिनृह्यस्त द्वोभयं वै प्रणवेनदेहे ॥१॥

जैसे अग्नि जब अपने कारण में चली जाती है, तब उसका स्थूल रूप तो दिखाई नहीं देता परन्तु उसका नाश नहीं होता, इन्धन के रूप में उसका लिंग बना रहता है जिससे पुनः उसका स्थूल रूप ग्रहण किया जा सकता है, इसो प्रकार "प्रणव" अर्थात् "ओंकार" के द्वारा "देह" में जीव तथा ईश्वर दोनों का ग्रहण किया जाता है ॥१॥

देह और प्रणव को अरणि बनाए

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ॥२॥

अपने "देह" को नीचे की और "प्रणव" को ऊपर की अरणि बनाकर "ध्यान" की रगड़ के अभ्यास से, पुनः-पुनः करने से छिपी हुई आग की भांति जीव तथा ईश्वर की ज्योति को देखे ॥२॥

ब्रह्मरूपी नौका से संसार नदी पार करे

त्रिरुन्नतं स्थाप्यसमं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेता विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥३॥

सिर, गर्दन, छाती—शरीर के इन तीनों अंगों को उन्नत रखकर इन्द्रियों को मन के आधीन और मन को हृदय में निविष्ट करके विद्वान् "ब्रह्म नाम" रूपी नौका पर सवार होकर संसार रूपी नदी के जितने पाप रूप भयावह स्रोत हैं, उन सबको तैर जाए ॥३॥

सर्वव्यापक देव को नमस्कार

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमोनमः ॥४॥

जो ईश्वर अग्नि में है, जलों में है, सम्पूर्ण भुवनों में सर्वव्यापक है, जो औषधियों, वनस्पतियों में है, उस देव को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥४॥

उसे जाने बिना कल्याण का कोई मार्ग नहीं है

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय ॥५॥

मैं उस महान् पुरुष को जानता हूं जो आदित्य की तरह द्युतिमान् है, अन्धकार से सर्वथा दूर है। उसी को जानकर मृत्यु को जीता जा सकता है, इसके अतिरिक्त कल्याण का कोई मार्ग नहीं है ॥५॥

बिना किसी अंग के वह समस्त क्रियाएं करता है

अपाणिपादोजनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्तिवेद्यं न च तस्यास्तिवेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥६॥

वह बिना हाथ-पांव के शीघ्र गति और ग्रहण करने वाला, बिना आंख-कान के देखने और सुनने वाला है, समस्त पदार्थों का उसे

ज्ञान है पर उसे जानने वाला कोई नहीं है—ऐसा सबसे श्रेष्ठ वह महान् पुरुष है ।।६।।

उस पर दृढ़ विश्वास से शान्ति की प्राप्ति

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येकोयस्मिन्निदं संचविचैति सर्वम् ।
तमीशानं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्त मेति ।।७।।

जो अकेला प्रत्येक कारण का अधिष्ठाता है, जिसमें यह विश्व इकट्ठा और बिखर जाता है, उस शक्तिमान् वरद और स्तुत्य देव पर दृढ़ विश्वास कर अत्यन्त शान्ति को प्राप्त होता है ।।७।।

वही शिव है और शान्ति का स्रोत है

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वरूप स्रष्टाक मनेक रूपम् ।
विश्वस्यै कं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्त मेति ।।८।।

विश्व के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु का भी वह अनेक प्रकार से सृष्टा है, विश्व को अकेले ढापे हुए है, उस शिव को जानकर अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है ।।८।।

समरथ पदार्थों का विनियोग करता है

यच्च स्वभावं पचति देवयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद्यः ।
सर्वमेतत् विश्वमधितिष्ठत्ये को गुरभांश्च सर्वान् विनियोजयेत् यः ।।

जो समस्त विश्व का कारण है, प्रत्येक वस्तु को नियमानुसार पका देता है, वह अकेला ही समस्त विश्व का अधिष्ठाता है, विश्व के सब द्रव्य और गुणों का वही अकेला ठीक विनियोग करता है ।६।

उस परम देव, श्रेष्ठतम को हम जानें

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्तात् विदाय देवं भुवनेशमीड्यम् ।।१०।।

ऐश्वर्यशालियों में भी परम महेश्वर देवों के परम देव, रक्षकों का भी स्वामी, श्रेष्ठतम भुवनों के स्वामी, स्तुति करने योग्य उस देव को हम जानें ।।१०।।

उसका बल, ज्ञान और क्रियाएं स्वाभाविक

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
पराऽस्य शक्ति विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ।११।

इस ब्रह्म का न कोई स्थूल रूप है और न ही उसकी कोई इन्द्रिय है न कोई उसके तुल्य और न ही कोई उससे अधिक है। इसकी श्रेष्ठ शक्ति अनेक प्रकार की है। इसके ज्ञान, बल और क्रिया सब स्वाभाविक हैं ॥११॥

वह स्वामियों का भी स्वामी है

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिलानैवच तस्य लिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधियो न चास्यकश्चित् जनिता न चाधिय: ।१२।

विश्व में कोई उसका स्वामी नहीं, कोई उस पर शासन करने वाला नहीं, और कोई उसका चिह्न नहीं। वह जगत् का कारण और इन्द्रियों के स्वामी आत्मा का भी वह स्वामी है। उसका कोई उत्पादक नहीं, उसका कोई अधिपति नहीं ।।१२॥

वह साक्षी और चेतन है

एको देव: सर्वभूतेषु गूढ: सर्वव्यापी सर्वभूतान्यरात्मा।
कार्याध्यक्ष: सर्वभूताधिवास: साक्षीचेता केवलो निर्गुशाश्च ॥१३॥

वह देव एक ही है और समस्त्र भूतों में गूढ़ सर्वव्यापी और प्राणियों के अन्तरात्मा में भी विद्यमान है। वह कर्म फल का संचालक है, सब भूतों में उपस्थित है. वह साक्षी, चेतन, केवल और सत्व, रज, तम इत्यादि गुणों से रहित है ॥१३॥

स्थिर सुख की प्राप्ति उसी के दर्शन से

एकोवशीनिष्क्रियाणां बहूनामेकं नीतं बहुधाय: करोति।
तमात्यस्थं पेऽनुपश्यन्ति धीरास्तेणां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१४॥

वह अकेला प्रकट रूप में निष्क्रिय तत्त्वों को अपने वश में करने वाला है। वह कारण प्रकृतिको अनेक रूप दे देता है, धीर लोग उसे अपनी आत्मा में स्थित जब देखते हैं। तब निरन्तर सुख प्राप्त करते हैं, दूसरे पुरुष नहीं ॥१४॥

उसे जानकर जीव बन्धन मुक्त हो जाता है

नित्योनियानां चेतनश्चेतनानामेको नहूनां यो विदधाति कामाम् ।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वादेवैमुच्यते सर्वपाशै ॥१५॥

जो नित्यों का नित्य, चेतनों का चेतन, जो एक होता हुआ भी अनन्त जीवों की कामनाओं को पूर्ण करता है। वही इस सृष्टि का कारण है, साँख्य और योग विद्याओं से प्राप्त होता है। यह जीव उस देव को जानकर सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है ॥१५॥

मैं मुमुक्षु उसकी शरण में जाता हूं

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं योवैवेदांश्च प्रहिणोति तस्यै ।
तैह देवमात्य बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणामहं प्रपद्ये ॥१६॥

जो पहले पहल ज्ञानी पुरुषों को इस संसार में भेजता है और उसके बाद जो वेदों का ज्ञान प्रदान करता है, जो आत्मा में बुद्धि का प्रकाश करे मैं मुमुक्षु उस देव की शरण में जाता हूं ॥१६॥

अमृत पद का वह पुल है

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥१७॥

जो निष्फल, निष्क्रिय, शान्त, निर्दोष, निर्लेप है, जो अमृत तक पहुंचने के लिए पुल तुल्य है, जो जले हुये इंधन की अग्नि की भांति निर्धूम है। मैं मुमुक्षु उस देव की शरण में जाता हूं ॥१७॥

मेरा शरीर स्वस्थ और प्रभु अर्पित हो

आप्यायन्तु ममांगानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथोबल मिन्द्रियाणि च सर्वाणि, सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मामा ब्रह्मनिराकरोदनिराकरणं मेऽस्तु अनिराकरणं मेऽस्तुतदात्यनि निरतेयउवनिषत्सु धर्मास्तेमपि सन्तुतेमपि सन्तु ॥

मेरे अंग पुष्ट हों, वाक्, प्राप्त, चक्षु, श्रोत्र बल युक्त और पूर्ग इन्द्रियां पुष्ट हों। सब उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म को मैं कभी न भूलूं और ब्रह्म भी मेरा निराकरण न करे। इस प्रकार उपनिषदों में वर्णित शिक्षाएं मेरे जीवन में आयें, मेरे जीवन में आयें।

प्रचार के लिए

आकर्षक वैदिक साहित्य

1. Light of Truth : अंग्रेजी "सत्यार्थ-प्रकाश"

महर्षि दयानन्द के महान् ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश का मास्टर दुर्गाप्रसाद कृत यह अनुवाद प्रत्येक दृष्टि से अनुपम है। छपाई, कागज जिल्द सभी दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक यह ग्रंथ लागतमात्र पर दिया जा रहा है। पृष्ठ ५७८। साइज डिमाई आठवाँ —मूल्य १०)। कपड़े की जिल्द १२)।

2. Life and Teachings of Swami Dayanand Rs. 10.00

महर्षि का अंग्रेजी जीवन चरित्र

बावा छज्जूसिंह द्वारा लिखित अनमोल ग्रंथ महर्षि के जीवन पर अनुपम प्रकाश डालता है। स्व० पं० लेखराम द्वारा संग्रहीत सामग्री के आधार पर तैयार यह जीवन अपने ढंग का अनुपम है। इसमें देश-विदेश के नेताओं द्वारा दी गई श्रद्धांजलियाँ, महर्षि के जीवन की प्रमुख घटनाएँ : प्रमुख शास्त्रार्थ और ३४ पृष्ठ आर्ट पेपर चित्र, १६ रंगीन चित्र आकर्षक पूरी कपड़े की जिल्द अपने ढंग की आप ही है। भेंट के लिए सर्वोत्तम, पृष्ठ ४२२। साइज डिमाई-आठवाँ— मूल्य १०) मात्र

3. Teachings of Swami Dayanand Rs. 0.75

महर्षि दयानन्द की विचारधारा और शिक्षाओं से सभी को परिचित कराने के लिए अनुपम पुस्तक।

4. Ten Commandments Rs. 1.00

आर्यसमाज के १० नियमों की अभूतपूर्व व्याख्या : स्व० प० चमूपतिजी जी की लेखनी से। मूल्य १)

5. Message of the Arya Samaj to the Universe ३० पैसे

भारतेन्द्र नाथ साहित्यालंकार लिखित—आर्यसमाज का संदेश फैलाने हेतु प्रभावशाली पुस्तिका—जिसका ८ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

6. Vedic-Prayer मूल्य २) ५०

संध्या, प्रार्थना मंत्र, हवन, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण ईशोपनिषद् आदि सभी की पूर्ण व्याख्या हिन्दी और अंग्रेजी में एक साथ और चुने हुए भजन—भेंट के लिए अत्युत्तम

7. Dayanand the Great (दूसरा नया संस्करण)

पं० वेद मित्र ठाकुर लिखित प्रभावशाली ट्रैक्ट मूल्य १५ पैसे

8. An Introduction to the Arya Samaj (नया संस्करण)
आर्यसमाज से सभी को परिचित कराने के लिए, प्रभावशाली ट्रेक्ट—१५ पैसे

9. The Great Gaytri मूल्य २० पैसे—१५) सैकड़ा
गायत्री मंत्र का यह सुन्दर अंग्रेजी अनुवाद प्रत्येक दृष्टि से आकर्षक है। सर्वश्रेष्ठ कागज पर रंगीन मोहक छपाई

10. The Vedic Fundamentals Rs. 2.50
वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्त समझने हेतु प्रभावपूर्ण मार्ग दर्शन

११. वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण मूल्य ६० पैसे

१२. योगेश्वर कृष्ण मूल्य ४० पैसे

भगवान् कृष्ण का यह जीवन चरित्र लाखों व्यक्तियों तक पहुंचाना चाहिए। ब्र. जगदीश विद्यार्थी एम. ए. लिखित।

१३. वैदिक-समाजवाद —आचार्य वीरसेन वेदश्रमी मूल्य ८० पैसे

१४. धर्मग्रन्थावलोकन १.५०
संसार के प्रमुख धर्म ग्रंथों का प्रामाणिक परिचय

१५. गीत—मंजरी (नया संस्करण) मूल्य १)

ईश्वर भक्ति के गीत और प्रभु से प्रार्थना करते हुए यदि आप सचमुच अपने आप को भुलाना चाहते हैं तो "गीत मंजरी का सहारा लीजिए।

१६. अमृत-पथ (सजिल्द) —दीनानाथ सिद्धान्तालंकार ३)

१७. सत्यार्थ-प्रकाश हिन्दी —उपहार संस्करण मूल्य ४)

१८. प्रार्थना मंत्र व्याख्या मूल्य ४० पैसे

हरिशरण जी सिद्धाँन्तालंकार लिखित प्रार्थना मन्त्रों की अनुपम व्याख्या।

१९. भारत की अवनति के ७ कारण

ब्र० जगदीश एम० ए० की लोह लेखनी द्वारा लिखित। पृष्ठ ६८। मूल्य ५० पैसे

२०. वैदिक-अध्यात्म-ज्योति मूल्य २)

२१. योग-जीवन मूल्य २)

२२. नीति-दोहावली मूल्य ८० पैसे

प्रत्येक आवश्यक विषय पर उपयोगी दोहे-कविताएं और प्रमाण जीवन के संदर्भ में प्रेरक मार्ग दर्शन —आचार्य जगदीश विद्यार्थी द्वारा संग्रहीत।

२३. ज्ञान-ज्योति ४०० पेजों का भाष्य मूल्य ३)

२४. वैदिक-सिद्धान्त मूल्य २)

२५. आर्यसमाज के नियम ८० पैसे

२६. लाल आंधी ८० पैसे

२७. Vedic-Life मूल्य २)५०

२६. ... ८० पैसे
३०. वैदिक भक्तिवाद
३१. वैदिक भक्तिवाद मूल्य २० पैसे, १५) सैंकड़ा

भक्ति का रस बरसे तो जीवन सरसे, इसे पीने-पिलाने के लिए पुस्तक उपस्थित है। मूल्य २५ पैसे

३२. विश्व को आर्यसमाज का सन्देश १५) सैंकड़ा

१०) सैकड़ा के उपयोगी प्रचार ट्रैक्ट

३३. आर्यसमाज क्या मानता है ? —मदनमोहन विद्यासागर
३४. विश्व को वेद का संदेश —भारतेन्द्र नाथ
३५. महर्षि दयानन्द की विशेषताएँ —महात्मा नारायण स्वामी
३६. आर्यसमाज की विचारधारा —गंगाप्रसाद उपाध्याय
३७, आर्य समाज की मान्यताएँ —पं० रामचन्द्र देहलवी
३८. आर्य कौन ? —रघुनाथ प्रसाद पाठक
३९. आर्य समाज के दस नियम —रघुनाथ प्रसाद पाठक
४०. ईसाई पादरी उत्तर दें। —स्वामी श्रद्धानन्द
४१. A Challenge to the Christian Faith ३) सैकड़ा
४२. Bible in the Balance —चार्ल्स स्मिथ १५ सैकड़ा
४३. ज्ञान विज्ञान का शत्रु ईसाई मत —ओम प्रकाश त्यागी १०) सैकड़ा
४४. पोप की सेना का भारत पर हमला —भारतेन्द्र नाथ १०) सैकड़ा
४५. ईसाइयों की प्रचार प्रणाली —जगत्कुमार शास्त्री १०) सैकड़ा
४६. पादरियों को चुनौती —स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती १०) सैकड़ा
४७. बाइबल को चुनौती —ओमप्रकाश त्यागी १५) सैकड़ा
४८. ईसाइयत की वास्तविकता —शांतिप्रकाश महोपदेशक १०) सैकड़ा
४९. बाइबल कसौटी पर —चार्ल्स स्मिथ १५) सैकड़ा
५०. सत्संग महिमा —स्वामी वेदानन्द तीर्थ २०) सैकड़ा
५१. स्वामी श्रद्धानन्द-जीवन चरित्र ५० पैसे
५२. उपनिषद् त्रयी ८० पैसे
५३. ऋषि दयानन्द जीवन चरित्र २६० पृष्ठ मूल्य १००) सैकड़ा
५४. वैदिक संध्या— अर्थ सहित १०) सैकड़ा
५५. ईश्वर-भक्ति —स्वामी सर्वदानन्द जी ६० पैसे
५६. वैदिक समाजवाद —पं० वीरसेन जी ८० पैसे
५७. उपनिषद्-वचनामृत —पं० दीनानाथ जी ५० पैसे

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७, हरध्यान सिंह मार्ग, करौल बाग नई दिल्ली-५

करना चाहते हैं।

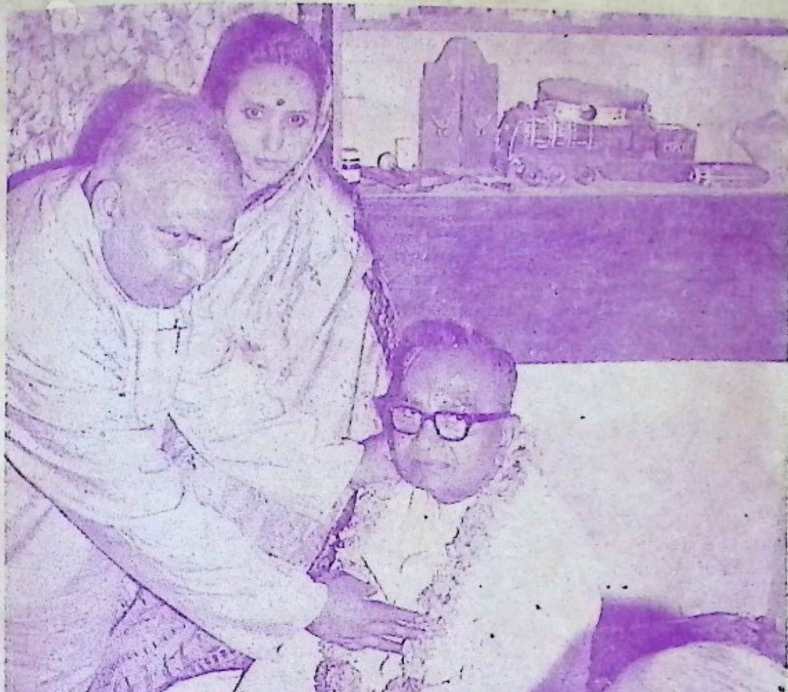
इस का मूल्य कम रखने के लिए हमें
१) प्रति आपकी सहायता चाहिए।

जो सत्यार्थप्रकाश हमने अल्प मूल्य में दिया है, उसे देखिए और उसे देख कर यदि आप को विश्वास हो, श्रद्धा हो और आप के मन में भी सत्याथ प्रकाश को घर-घर पहुंचाने की भावना जागे तो—

**उदारता से अधिक से अधिक
धन भेजिए।**

आप जितने रुपए भेजेंगे
उतने ही "सत्यार्थप्रकाश" प्रकाशन का पुण्य
आप को प्राप्त होगा।

विनीत
अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान नई-दिल्ली-५



सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद्मभूषण डा० डी० राम का दयानन्द संस्थान में संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार ने पुष्प-मालाओं से स्वागत किया।



संस्थान के द्वार पर सार्वदेशिक सभा के प्रधान डा० डी. राम। चित्र पं. सच्चिदानन्द जी, आचार्य श्री वैद्यनाथ जी, दीवानहाल समाज के मंत्री श्री देवराज जी और दयानन्द संस्थान के